पूर्वांचल खेती

वर्ष : 30 मार्च 2020 अंक : 03

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

वर्ष 30 | मार्च, 2020 | अंक 03

संरक्षक
डॉ. बिजेन्द्र सिंह
कुलपति

प्रधान सम्पादक
प्रो. ए. पी. राव
निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक
डॉ. अनिल कुमार
सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)
मो. नं. 9415140493

सम्पादक मण्डल

डॉ. आर. आर. सिंह
प्राध्यापक, मृदा विज्ञान

डॉ. वी. एस. चन्देल
सह प्राध्यापक, उद्यान

डॉ. अनिल कुमार
सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

डॉ. वी. पी. चौधरी
सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक
उमेश पाठक
मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

कद्दू की खेती एवं बीजोत्पादन तकनीक 01
—डॉ. राजेश, कुमार सिंह, डॉ. मनोज कुमार सिंह, डॉ. के.के. श्रीवास्तव एवं अमरनाथ सिंह

उत्कादकता एवं लाभ बढ़ाने हेतु गन्ने के साथ मेन्था की सह—फसली खेती 04
—डॉ. अनिल कुमार

हरी खाद उत्पादन तकनीक 07
—डॉ. रामलखन सिंह, डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. ओम प्रकाश

चौलाई की वैज्ञानिक खेती कैसे करें 09
—डॉ सत्यप्रकाश एवं डॉ एके सिंह

बेल से तैयार किये जाने वाले पेय पदार्थ और उनको बनाने की विधि 12
—अंकित सिंह, आलोक कुमार सिंह, आनन्द कुमार पाण्डेय, ए0के0 सिंह एवं आर0के0 यादव

कीटनाशक दवाओं का सुरक्षित रख—रखाव 14
—रविन्द्र नाथ निषाद, सूरज कुमार एवं कृष्ण कुमार

कद्दू वर्गीय प्रमुख रोगों का प्रबंधन करके अधिक लाभ कमाऐं 16
—कृष्ण कुमार सूरज कुमार, अक्षय कुमार एवं अजीत कुमार

शिशु के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है स्वच्छता एवं स्तनपान 18
—डॉ0 श्रीमती रेनू सिंह एवं डॉ. श्रीमती प्रेमलता श्रीवास्तव

मूँग की वैज्ञानिक ढंग से खेती तथा इसमें लगने वाले प्रमुख कीड़ों व रोगों की उचित रोकथाम 20
—शिवेन्द्र प्रताप सिंह, अमरनाथ सिंह, अनुभूति सिंह, सुधाकर सिंह

सब्जी बीज ग्राम अवधारणाः ग्रामीण स्वावलम्बन के लिए सफलता की कुंजी 22
—निशाकान्त मौर्य, डॉ गुलाब चंद यादव एवं रागिनी मौर्य

गेहूँ की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोगों की पहचान और फसल प्रबंधन 25
—डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. एल सी वर्मा, डॉ. एस एन सिंह एवं डॉ. डी पी सिंह

पशु मदहीनता में खनिज लवणों एवं संतुलित आहार का महत्व 28
—डॉ. एस एन लाल, डॉ. सतीश कुमार सिंह, एवं डॉ. अनिल कुमार

मार्च माह में किसान भाई क्या करें 30

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 31

बॉक्स सूचनाएं

कृषि लागत कम करने हेतु सुझाव 17
पूर्वांचल खेती पढ़िये, आगे बढ़िये 29

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	वाराणसी	डॉ. संजीत कुमार	9837839411	05542–248019
2.	बस्ती	डॉ. एस. एन. सिंह	9450547719	05498–258201
3.	बलिया	डॉ. रवि प्रकाश मौर्य	9453148303	–
4.	फैजाबाद	डॉ. शशिकान्त यादव	9415188020	05278–254522
5.	मऊ	डॉ. एस. एन. सिंह चौहान	–	0547–2536240
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	9458362153	0541–2260595
7.	बहराइच	डॉ. एम. पी. सिंह	9415172725	05252–236650
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	9415155818	–
9.	आज़मगढ़	डॉ. के. एम. सिंह	9307015439	–
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	9455501727	
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	9984369526	–
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. एल. सी. वर्मा	7376163318	05541–241047
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	–
15.	बलरामपुर	डॉ. वी. पी. सिंह	9839420165	–
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	9918622745	–
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	9415039117	–
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	9838952621	–
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. विनायक शाही	8755011086	–
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. ओम प्रकाश	9452489954	–
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	9450885913	–
22.	अमहित–जौनपुर	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	–	–
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	9411320383	–

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाषा कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. शशांक शेखर सिंह	–	–
2.	गोण्डा	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–
3.	देवरिया	श्रीमती सरिता श्रीवास्तव	9415419712	–
4.	गाजीपुर	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाषा कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. एस. के. सिंह	9450164714	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. तेजेन्द्र कुमार	9415560503	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. गजेन्द्र सिंह	7379576412	0548–223690

प्रो. ए. पी. राव
निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

भारत वर्ष में हल्दी सौंदर्य प्रसाधनों, मांगलिक कार्यों के साथ–साथ धार्मिक अनुष्ठानों एवं देव पूजन आदि में भी अति महत्वूपर्ण है। जिस प्रकार खाद्यान्न फसलों में धान एवं गेहूँ का महत्व है उसी प्रकार मसाले वाली फसलों में हल्दी का महत्वपूर्ण स्थान है।

बढ़ते शहरीकरण, घटती जोत एवं बढ़ते आर्थिक दबाव के कारण दूसरे व्यवसायों की तरफ कृषकों का पलायन रोकने हेतु वैकल्पिक कृषि प्रणालियों की आवश्यकता महसूस होने लगी। पिछले कुछ वर्षों में ऐसा देखा गया कि बहुत से किसान खेती से पलायन कर रहे हैं क्योंकि इससे लाभ कम होता जा रहा है। कृषको का कृषि से पलायन रोकने हेतु कृषि में वैकल्पिक एवं लाभप्रद आधारित फसल प्रणालियाँ विकसित करनी होगी। जहाँ से कृषक भूमि के एक ही हिस्से से अधिक आर्थिक लाभ ले सकें तथा कृषक अपनी आर्थिक जरूरतों को अपने पास उपलब्ध कृषि योग्य भूमि से ही पूर्ण कर सकें। इस दिशा में हल्दी एक महत्वपूर्ण फसल है क्योंकि इसकी खेती छायादार स्थानों में भी की जा सकती है। अतः कृषक हल्दी की खेती अपने बागानों में भी कर सकते हैं। इस प्रकार से बाग से होने वाले आर्थिक लाभ के साथ–साथ हल्दी की खेती कर अतिरिक्त लाभ अर्जित किया जा सकता है।

पूर्वाञ्चल खेती के इस अंक में **मूँग की वैज्ञानिक खेती, गेहूँ में यूरिया का पर्णीय छिड़काव, गेहूँ में प्रमुख रोग, कीट, खरपतवार एवं उनका प्रबंधन, रबी तिलहनी फसलों की व्याधियां एवं उनकी रोकथाम, गेंदे की खेती से लागत कम लाभ अधिक, रजनीगंधा की उन्नतशील खेती जावा घास की खेती (सिट्रोनेला): आय का नया साधन, तरबूज की खेती कैसे करें?, पीली हल्दी की उत्पादन तकनीकी, दुधारू पशुओं में टीकाकरण का महत्व, पी.पी.आर. बकरियों की महामारी, फरवरी माह में किसान भाई क्या करें?, प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के** जैसे लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि किसानों की आय में वृद्धि के लिये यह अंक उपयोगी सिद्ध होगा।

(ए.पी. राव)

कद्दू की खेती एवं बीजोत्पादन तकनीक

डॉ. राजेश, कुमार सिंह*, डॉ. मनोज कुमार सिंह*, डॉ. के.के. श्रीवास्तव* एवं अमरनाथ सिंह*

लतावाली सब्जियों में कद्दू का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में लतावाली सब्जियों में लगभग 25% खेती अकेले कद्दू की जाती है। सामान्य भूमि से लेकर नदियों के किनारे (दियरा भूमि में) भी इसकी खेती कर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा रही है। अच्छी आमदनी प्राप्त करने हेतु इसकी प्रगतिशील प्रजातियों का चुनाव कर खेती करना काफी लाभप्रद है। ऐसी दशा में इसका गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन कर अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। उत्तर भारत में गर्मी में उत्पादन हेतु फरवरी के अन्त में, वर्षा हेतु जून–जुलाई में तथा सर्दी हेतु दक्षिणी भारत में प्रायः सितम्बर से दिसम्बर एवं जनवरी से मार्च तक इसकी बुआई की जाती है।

भूमि

अच्छी जीवाँशयुक्त एवं जल निकास वाली भूमि में इसकी खेती व्यापक स्तर पर किये जाने की संस्तुति की जाती है। जल भराव वाली भूमि में इसकी खेती नहीं की जा सकती। इसकी खेती हेतु सिचाईं की सुविधा अच्छी होनी चाहिये।

उर्वरक

इसकी लाभकारी खेती हेतु 100:100:100 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से एनपीके उर्वरको का दिया जाना श्रेयस्कर होता है। नाईट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के पूर्व खेतों में प्रयोग कर अन्तिम जुताई कर देनी चाहिये। नाइट्रोजन की शेष बचे भाग को बुआई के 30–60 दिन के अन्दर दो बार में दिया जाना आवश्यक होता है। अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु 20 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से दिया जाना आवश्यक होता है।

बीज दर

इसकी खेती हेतु 3–5 किग्रा प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बीज उपचार

2 ग्राम प्रति किग्रा की दर से कैप्टान या बोरेक्स नामक दवा से मृदा जनित रोग से बचाव हेतु बीजों को बुआई पूर्व उपचारित करना चाहिये।

बुआई का समय

उत्तरी भारत में–गर्मी फसल हेतु फरवरी के अन्त तक वर्षा फसल हेतु जून–जुलाई तक।

दक्षिणी भारत में–सितम्बर से दिसम्बर तक तथा जनवरी से मार्च तक।

दूरी

कद्दू की बुआई 1मी गुणा 1मी पंक्ति से पंक्ति तथा पौध से पौध की दूरी पर की जाती है।

खर–पतवार नियंत्रण

अन्तिम कटाई तक खर पतवारों का नियंत्रण किया जाना आवश्यक होता हैं कद्दू फसलों को वायरस रोग से बचाव हेतु खर–पतवार विहीन रखना आवश्यक होता है। इसके लिये 2–3 गुड़ाई कर खर–पतवार को निकाल देना चाहिये।

उन्नतिशील प्रजातियाँ

आनन्द पम्पकिन–1

*बीज उत्पादन अधिकारी, **प्रक्षेत्र प्रबन्धक, ***बीज उत्पादन अधिकारी, ****प्रशिक्षण सहायक, आचार्य नेरन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

इसके फल मध्यम आकार के, उच्च टी.एस.एस., केरोटीन एवं प्रोटीन से भरपूर होते हैं। यह प्रजाति गुजरात कृषि विश्वविद्यालय आनन्द से विकसित की गयी है। इसकी औसत उपज 250 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

नरेन्द्र अग्रिम

यह प्रजाति आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौ. वि0वि0, अयोध्या द्वारा विकसित की गयी है। इसके फल छोटे छोटे तथा धारी वाले होते हैं। गर्मी के लिये यह काफी उपयुक्त प्रजाति है इसकी औसतन पैदावार 300–400 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है। इसकी खेती सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा तथा गुजरात में किये जाने की संस्तुति की जाती है।

नरेन्द्र आभूषण

इसका फल गोल गहरे हरे रंग लिये धारीदार तथा काफी आकर्षक होते हैं। यह प्रजाति आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ. विश्वविद्यालय, अयोध्या से विकसित की गयी है। इसका औसत उत्पादन 700 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होता है।

सी.ओ.–1

इसका फल 8–10 किग्रा तक, हल्का गुलाबी रंग के छिलके का पीले रंग के गूदे वाला होता है। यह प्रजाति तमिलनाडु कृषि वि.वि. कोयम्बटूर द्वारा विकसित की गयी है। इसकी औसत उपज 300 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

सी.ओ.–2

इसका फल छोटा लगभग 1.5 किग्रा वजन का होता है। फल का रंग हल्के भूरे रंग का तथा पीले रंग के गुदे वाला होता है। इसकी औसत उपज 250 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

आजाद पम्पकिन–1

यह प्रजाति चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर द्वारा विकसित की गयी है। इसके फल हरे रंग के, मध्यम आकार वाले होते हैं। यह प्रजाति उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में, उत्तराखण्ड, बिहार एवं झारखण्ड के लिये काफी उपयुक्त है। इसकी औसत उपज 450–500 कु/हेक्टेयर होती है।

अर्जुन एफ–1

कद्दू की यह संकर किस्म है। इसके पौधे काफी स्वस्थ एवं देखने में आकर्षक होते हैं। यह प्रजाति ईस्ट–वेस्ट सीड्स (इण्डिया) द्वारा विकसित की गयी है। इसके फल गहरे हरे रंग के वजन में 4–5 कि.ग्रा. तक के होते हैं। फल चपटा गोल आकार का होता है जो बुआई से 80–85 दिन में तोड़ाई के लिये तैयार हो जाता है। परिपक्वता पर फलों का रंग पीला हो जाता है।

सोमा एफ–1

यह प्रजाति भी ईस्ट–वेस्ट सीड्स (इण्डिया) द्वारा विकसित कदृदू की एक संकर प्रजाति है। आकार में इसका फल भी चपटा गोल आकार का होता है। इसके फल वजन में 2.5 से 3.5 किग्रा के होते हैं। अपरिपक्व दशा में इसके फल का रंग चमकदार हरे रंग का होता है, जो परिपक्वता पर भूरे रंग का हो जाता है। इसका गूदा नारंगी रंग लिये स्वाद में काफी मीठा होता है।

बीज उत्पादन में विशेष सावधानियाँ

(1) पृथक्करण दूरी

आधारीय श्रेणी के उत्पादन हेतु एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति की दूरी 1500 मीटर तथा प्रमाणित श्रेणी के उत्पादन हेतु कम से कम 1000 मीटर की दूरी अवश्य रखनी चाहिये जो राज्य बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा मानक निर्धारित है, अन्यथा की स्थिति में फसल बीज उत्पादन में अयोग्य हो सकती है।

(2) पंजीयन

बीज उत्पादक को बीज उत्पादन हेतु अपने स्थानीय जनपद/मंडल स्तर पर स्थापित राज्य बीज प्रमाणीकरण संस्था को क्रय किये गये बीज की रसीद तथा टैग के साथ–साथ निर्धारित शुल्क जमा कर पंजीयन कराना आवश्यक है। जिसके लिये निर्धारित

प्रोफार्मा को भर कर जमा किया जाता है।

(3) अवांछनीय पौधों को निकालना

संस्था के प्रतिनिधि द्वारा निरीक्षण पूर्व बीजों में अनुवांशिक शुद्धता बनाये रखने हेतु भिन्न गुण वाले या भिन्न दिखने वाले पौधों को तत्काल उखाड़ देना चाहिये, जिससे मिश्रण की सम्भावना से बचा जा सके। इसे रोगिंग कहा जाता है। बीज उत्पादन में यह बहुत ही महत्वपूर्ण घटक होता है।

(4) हारवेस्टिंग

पूर्ण रूप से परिपक्व फलों को ही बीज निकालने हेतु तोड़ाई करना चाहिये जिसमें बीज पूर्ण रूप से परिपक्व हों।

रोग एवं कीट नियंत्रण

रोग

बीज उत्पादन हेतु निरोग फलों का होना आवश्यक होता है। रोग ग्रसित फलों से बीज उत्पादन मानक के अनुरूप नहीं किया जा सकता। अतः कद्दू फसल में लगने वाले रोगों की पहचान कर नियंत्रण किया जाना अति आवश्यक होता है मुख्य रोगों का विवरण एवं नियंत्रण निम्नवत् है –

(1) डाऊनी मिल्ड्यू

कद्दू फसल में इस रोग का अधिक आदर्ता तथा गर्मी में लगातार वर्षा होने की दशा में तेजी से प्रकोप होता है। पत्तियों के ऊपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देने लगते हैं तथा पत्तियों के निचली सतह पर सफेद रंग के चूर्ण (स्पोर) दिखाई देने लगते हैं। इसके बचाव के लिये 0.25% मैकोजेव 3–4 बार 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करने से इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

(2) मोजैक

कद्दू फसल में लगने वाला यह भयंकर रोग एक वायरस द्वारा फैलता है। इस रोग से पौधों की बढ़वार रुक जाती है। इसका प्रकोप नई पत्तियों पर अधिकाधिक रूप से देखा जा सकता है। इसके नियंत्रण हेतु सर्व प्रथम रोग ग्रसित पौधों को तुरन्त उखाड़कर काफी दूरी पर गड्ढे में डालकर मिट्टी से ढक देना चाहिये, साथ ही फसल चक्र अपनाने से भी इस पर नियंत्रण किया जा सकता है। रोग दृष्टिगत् होने की दशा में फसल पर 0.05% डाईमेथोएट या इमिडाक्लोरपिड (3.5 मिली./10 ली. पानी में) एक सप्ताह के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करने से रोग पर नियंत्रण किया जा सकता है।

कीट व्याधि

कद्दू फसल को निम्न कीटों द्वारा नुकसान पंहुँचाया जाता है जिसका नियंत्रण किया जाना आवश्यक होता है। विवरण निम्नवत् हैं–

(1) फल मक्खी

परिपक्व मक्खी 4–5 मिमी लम्बी होती है जिनके लारवा फलों में छेद कर खाना प्रारम्भ कर देते हैं। इसके नियंत्रण हेतु ग्रसित फलों को इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिये। 0.05% इण्डोसल्फान का छिड़काव करने से कीट पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

(2) रेड पम्पकीन वीटल

जो फल जमीन के सम्पर्क में होते हैं उन फलों पर इसका प्रकोप अधिक होता है। इसके प्रौढ. पौधों के चौतरफा भूमि में अण्डा देते है जिससे लारवा निकलकर जड़ों तथा जमीन से सम्पर्क वाले भाग एवं फलों को काफी नुकसान पंहुँचाते हैं। इनके प्रकोप से नई उगने वाली पौध सूख जाती है। इससे बचाव के लिये पौध के आस–पास खर–पतवारों को गुड़ाई कर निकाल देना चाहिये। 5% कार्बाईड पाउडर का बुरकाव या 0-2% कार्बाईड का छिड़काव करना चाहिये।

उपजः

उपरोक्तानुसार सामान्य दशा में खेती करने से कद्दू फसल से 0.5–1.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर बीज प्राप्त किया जा सकता है।●

उत्कादकता एवं लाभ बढ़ाने हेतु गन्ने के साथ मेन्था की सह-फसली खेती

डॉ. अनिल कुमार*

मेन्थॉल मिन्ट के उत्पादन एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। इसकी खेती मुख्य रूप से उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में ग्रीष्म कालीन फसल के रूप मे की जाती है। मेंथाल मिन्ट से प्राप्त अधिक आर्थिक लाभ तथा इसकी खेती के लिये विशेष अनुकूल परिस्थितियों जैसे–ग्रीष्म काल में खाली खेतो का सदुपयोग, जानवरों द्वारा पहुँचाये जाने वाले नुकसान से सुरक्षित फसल, खाली समय में संसाधनों एवं समय का बेहतर उपयोग, इसकी खेती के फैलाव के लिये मील का पत्थर साबित हुये हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षो में मेंथाल मिन्ट के तेल के बाजार भाव के गिरावट के कारण इस फसल के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में कमी के संकेत मिले हैं।

गन्ने के साथ मेंन्थाल की खेती

मेंन्थाल मिन्ट की तरह गन्ने की बुआई सामान्यतः फरवरी से शुरू होकर अप्रैल तक होती है, जो एक वरदान सिद्ध हो सकती है, क्योंकि इससे किसानों को निम्नलिखित प्रत्यक्ष लाभ होंगे।

(1) क्योंकि गन्ने की फसल से उत्पादन एक वर्ष बाद मिलता है, मेंन्थॉल मिन्ट की फसल प्रथम तीन माह में ही किसानों को आर्थिक लाभ दे सकती है।

(2) गन्ना लगाने की विधि के चुनाव के अनुसार गन्ने की दो लाईनों के बीच की दूरी 75 से 120 सेमी होती है। अतः प्रारम्भिक अवस्था में खाली स्थान पर खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है। मेंन्थॉल मिन्ट की सह–फसल लगभग खरपतवारों के निकालने की कीमत पर ही की जा सकती है।

(3) क्योंकि गन्ने में अकुंरण के बाद कल्ले निकलने का कार्य 70–80 दिन बाद शुरू होता है, दोनों फसलों के बीच सूर्य की रोशनी एवं अन्य संसाधनों के लिए फसल प्रतिस्पर्धा न के बराबर रहती है।

(1) पौध तैयार करना एवं रोपाई

गन्ना लगाने की शुष्क विधि (जिसमें गन्ना गेहूँ के समान खेत तैयार करके बोया जाता है) के अन्तर्गत, गन्ने की बुवाई के 8–10 दिन बाद तथा गीली विधि (जिसमें गन्ना बोने के तुरन्त बाद पानी लगा दिया जाता है) के अन्तर्गत, गन्ना बोने के 30–35 दिन पहले मेन्थॉल मिन्ट की जड़ें काटकर पौध उगाने हेतु नर्सरी डाल देनी चाहिए।

मेन्थॉल मिन्ट की अन्तः फसल लेने का तरीका गन्ना लगाने की विधि पर निर्भर करता है, जिसका विवरण निम्न प्रकार है।

(क) सामान्य फ्लैट प्लान्टिंग

गन्ने की बुआई समतल विधि में सामान्यतः 75 या 90 सेमी पक्ति की दूरी पर की जाती है। इसमें मेन्थॉल मिन्ट की खेती अन्तः फसल के रूप में लेने के लिए मेन्थॉल मिन्ट की एक लाइन की रोपाई गन्ने की दो लाइनों के बीच में कर दी जाती है तथा मेन्थॉल मिन्ट के पौधे से पौधे की बीच की दूरी यदि गन्ना 75 सेमी पर लगा है तो 15 से 25 सेमी और गन्ना 90 समी की दूरी पर लगा है तो यह दूरी घटाकर 10 से 20 सेमी कर दी जाती है।

*एस.एम.एस. (प्रक्षेत्र प्रबन्धन), आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

किसी भी पद्धति में सफल उत्पादन हेतु उपर्युक्त पौधों की संख्या भूमि की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करती है। पौधों की सही संख्या का निधार्रण करने हेतु फसल की प्रकृति एवं फसल काल के अनुसार लाइन से लाइन एवं पौधे से पौधे की उचित दूरी का निर्धारण किया जाता है। सामान्यतः अगर उर्वरा शक्ति अच्छी होती है तो दूरी अधिक कर दी जाती है तथा उसके विपरीत यदि उर्वरा शक्ति कम हो रही है तो दूरी कम कर दी जाती है।

(ख) सामान्य मेड़ व कूँड़ प्लान्टिंग

इस विधि में पहले खेत में 75 या 90 समी पर आलू की तरह मेड़ बना दी जाती है। बाद में कूँड़ में गन्ने की एक लाइन में बुआई की जाती है तथा मेंड़ों के दोनों तरफ मेन्थॉल मिन्ट की दो लाइनों की रोपाई कर दी जाती है। अगर गन्ना 75 सेमी की दूरी पर है तो मेड़ों के दोनों तरफ मेन्थॉल मिन्ट की दूरी 35 से 45 सेमी तथा 90 सेमी की दूरी पर गन्ना बोने की स्थिति में यह दूरी घटा कर 25–35 सेमी कर दी जाती है।

(ग) जुड़वाँ फ्लैट प्लान्टिंग

इस विधि के तहत गन्ने की दो लाइनों की बीच की दूरी घटाकर, अगली लाइन ज्यादा दूरी पर ली जाती है। इस तरह गन्ने की लाइनें सामान्य विधि के बराबर ही रहती है, लेकिन गन्ने की प्रत्येक दो लाईनों के बाद मेन्थॉल मिन्ट लगाने के लिए जगह बढ़ जाती है। अगर गन्ने की सामान्य बुआई 75 सेमी पर की जा रही है तो इस विधि द्वारा गन्ने की दो लाइनें जो कि 30 सेमी की दूरी पर कर दी जाती है एवं उनके बीच में मेन्थॉल की रोपाई नहीं की जायेगी, लेकिन अगली दो लाइनों के बीच में बढ़ी हुई दूरी जो कि 120 सेमी हो जाती है में मेंन्थॉल मिन्ट की दो लाइनें 40 सेमी की दूरी पर लगायी जाती है तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से 25 सेमी रखी जाती है। अगर गन्ने की सामान्य बुआई 90 सेमी पर की जा रही है तो मेन्थॉल मिन्ट लगाने के लिए गन्ने की दो लाइनों के बाद बची हुई 150 सेमी जगह में मेन्थॉल मिन्ट की दो लाइनें 50 सेमी की दूरी पर कर दी जाती हैं तथा पौधे से पौधे की दूरी घटाकर 10 से 20 सेमी कर दी जाती है।

(घ) जुड़वाँ मेढ़ व कूँड़ विधि

इस विधि में खेत की तैयारी करने के बाद पीछे बताई गई मेड़ व कूँड़ विधि की तरह ही रोपाई की जाती है। लेकिन कूँड़ो की चौड़ाई बढ़ा दी जाती है, जिससे प्रत्येक कूँड़ में 30 सेमी की दूरी पर गन्ने की दो लाइनों की बुआई की जा सके। इसके बाद बीच में बची हुई दूरी जो कि 75 सेमी की दूरी के अनुसार 150 सेमी होगी, में मेड़ आ जाती है, इस मेड़ पर दोनों तरफ मेन्थॉल मिन्ट की रोपाई कर दी जाती है। मेंड़ के दोनों तरफ मेन्थॉल मिन्ट के पौधे की दूरी 75 सेमी की दशा में 15–25 सेमी तथा 90 सेमी की दशा में 10–20 सेमी कर दी जाती है।

(3) भूमि की तैयारी एवं पोषक तत्व प्रबन्धन

मेन्थॉल मिन्ट के लिए भूमि की कोई विशेष तैयारी नहीं करनी पड़ती, फिर भी अगर गन्ने के साथ सह फसली खेती की जा रही है तो गन्ने की बुआई की कूँड़ विधि समतल विधि की अपेक्षा में उत्तम है। मेन्थॉल मिन्ट की खेती के लिये 50 किग्रा नाइट्रोजन, 50 किग्रा फास्फोरस, 50 किग्रा पोटाश अतिरिक्त रूप से भूमि की ऊपरी सतह में मिला देना चाहिए। इसके बाद 50 किग्रा /हेक्टेयर के हिसाब से नाइट्रोजन की दो बार और आवश्यकता पड़ती है, जिसको मेन्थॉल मिन्ट की फसल में, मेन्थॉल मिन्ट लगाने के 35–40 एवं 50–60 दिन बाद छिड़काव द्वारा देना चाहिये।

(4) मेंन्थॉल मिन्ट की रोपाई

मेंन्थॉल मिन्ट की रोपाई पीछे दर्शाये गये चित्रों के अनुसार करनी चाहिए। अगर रोपाई फरवरी के बाद विलम्ब से की जाती है तो मेन्थॉल मिन्ट के पौध की दूरी कम कर देनी चाहिए।

(5) मेन्थॉल मिन्ट की खेती के लिए अन्य सस्य क्रियाएं

मेन्थॉल मिन्ट अधिक खाद व पानी चाहने वाली फसल है, इसलिए आवश्यकतानुसार जल एवं पोषक तत्वों की पूर्ति करते रहना चाहिए। पानी की कमी होने से फसल में दीमक का प्रकोप हो सकता है। अतः पानी की कमी नहीं होने देना चाहिए। लेकिन ध्यान रहे कि

मेन्थॉल मिन्ट को अधिक पानी भी नुकसान पहुँचाता है। फसल में आम तौर पर कीट एवं बीमारियों का प्रकोप कम होता है। फिर भी समय–समय पर निरीक्षण तथा कीटों एवं बीमारियों का प्रबन्धन समुचित तरीके से करते रहना चाहिए।

(6) मेन्थॉल मिन्ट की कटाई एवं उपज

सामान्यतः मेड़ों पर रोपाई किये गये मेन्थॉल मिन्ट की फसल 70–80 दिन तथा समतल में रोपाई किये गये मेन्थॉल मिन्ट की फसल 90–100 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाती है। ऊपर की पत्तियों का छोटा होना एवं नीचे की पत्तियों का पीला पड़ना परिपक्व फसल की मुख्य पहचान है। गन्ने के साथ मेन्थॉल मिन्ट की सह फसल से एक कटाई से 100–110 किग्रा तेल प्रति हेक्टेयर की दर से मिल जाता है।

विभिन्न क्षेत्रों में मेन्थॉल मिन्ट के तेल की उत्पादन लागत

मेंन्थॉल मिन्ट में सबसे अधिक खर्च सिंचाईं एवं खरपतवार नियंत्रण पर होता है। सिंचाई में मुख्य घटक पानी की कीमत है, वहीं खरपतवार नियंत्रण में श्रमिको के ऊपर किया जाने वाला खर्च मुख्य घटक होता है। इसके अलावा सभी कृषि कार्यों हेतु श्रमिकों की आवश्यकता होती है। अतः मिन्ट मेन्थॉल में सबसे अधिक खर्च श्रमिकों की मजदूरी की दर के अनुसार आता है जिसमें क्षेत्रों के अनुसार काफी भिन्नता है। पूर्वी क्षेत्रों में मजदूरी की दर रू0 150 प्रतिदिन, मध्य क्षेत्र में रू0 200 तथा पश्चिमी क्षेत्रों में रू0 300 प्रतिदिन होने के कारण मेंन्थॉल मिन्ट के कुल उतपादन हेतु कुल लागत में क्षेत्र विशेष के आधार पर काफी भिन्नता आ जाती है। जैसा कि सारिणी–1 में दर्शाया गया है। उत्र भारत के मैदानी भागों के पूर्वी क्षेत्रों में लगभग रू0 44,800 प्रति हेक्टेयर, मध्य क्षेत्रों में रू0 54,800 प्रति हेक्टेयर तथा पश्चिमी क्षेत्रों में मेन्थॉल मिन्ट के उत्पादन की लागत लगभग रू0 72,300 प्रति हेक्टेयर आती है। लेकिन क्षेत्र विशेष के आधार पर मेन्थॉल की उत्पादकता में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। सभी क्षेत्रों में मेन्थॉल मिन्ट लगाने की समतल विधि से औसत उपज 140 किग्रा प्रति हेक्टेयर आती है, वहीं अगेती मिन्ट तकनीक से औसत उपज 165 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जातह है। अगर उत्पादन लागत में भिन्नता के हिसाब से देखा जाये तो समतल विधि द्वारा पूर्वी क्षेत्रों, मध्य क्षेत्रों एवं पश्चिमी क्षेत्रों में प्रति किग्रा तेल की उत्पादन लागत क्रमशः रू0 320 प्रति किग्रा रू0 391.40 प्रति किग्रा तथा 516.40 प्रति किग्रा आती है। यह लागत अगेती मिन्ट तकनीकि द्वारा कम होकर पूर्वी क्षेत्रों, मध्य क्षेत्रों एवं पश्चिमी क्षेत्रों में घटाकर क्रमशः रू0 217.20 उवं 350.50 प्रति किग्रा की जा सकती है।

उपरोक्त स्थिति में मेन्थॉल मिन्ट के प्रचलित क्षेत्रों (पश्चिमी भागों) में न केवल मेन्थॉल मिन्ट की खेती बल्कि मेन्थॉल मिन्ट पर आधारित कुटीर एवं बड़े उद्योगों के सामने एक चुनौती पूर्ण स्थिति पैदा हो रही है। यदि यह फसल किसानों के लिए अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी नहीं रहेगी तो किसानों का रुझान इसकी खेती के प्रति कम होता जायेगां ऐसी स्थिति में मेन्थॉल मिन्ट पर आधारित उद्योग कच्चा माल न मिलने के कारण बन्द होने के कगार पर पहुँच सकता है। उपरोक्त परिस्थितियों में मेन्थॉल मिन्ट की खेती एवं उत्पादन को न केवल टिकाऊ बल्कि बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए।

(1) मेन्थॉल मिन्ट की अधिक पैदावार देने वाली नवीन किस्मों का विकास एवं खेती।

(2) ऐसी कृषि पद्धतियों का विकास जिससे लागत कम हो तथा उत्पादन बढ़े।

(शेष पृष्ठ 11 पर)

सारिणी–1 उत्तर भारत के विभिन्न मैदानी क्षेत्रों में मेन्थॉल मिन्ट की उत्पादन लागत (प्रति हेक्टेयर)

मद / विवरण	(लागत रूपये)
भूमि की तैयारी (2 जुताई)	3400
पौध सामग्री	1400
नर्सरी में पौध तैयार करना	1500
ले–आउट	2000
पौध रोपण	4000
सिंचाई	10000
खरपतवार प्रबन्धन	8000
पोषक तत्व प्रबन्धन	7000
फसल सुरक्षा	1000
कटाई	4000
आसवन	9000
कुल लागत	54800
औसत तेल उत्पादन	140

उ0प्र0 के लखनऊ, बाराबंकी, सीतापुर इत्यादि

हरी खाद उत्पादन तकनीक

डॉ. रामलखन सिंह*, डॉ. प्रदीप कुमार**, डॉ. ओम प्रकाश***

मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने हेतु दलहनी एवं गैर दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर जुताई करके मिट्टी के अपघटन के लिए दबाना ही हरी खाद कहलाता है। दलहनी फसल को जड़ ग्रन्थियों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु द्वारा वातावरण से नाईट्रोजन को भी मिट्टी में स्थित करती है। आश्रित पौधे के उपयोग के बाद जो नाइट्रोजन मिट्टी में शेष रह जाता है उसे आगामी फसल द्वारा उपयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त दलहनी फसलें भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने, प्रोटीन की प्रचुर मात्रा के कारण पोषकीय चारा उपलब्ध कराने तथा मृदा क्षरण के अवरोधक के रूप में विशेष स्थान रखती है।

हरी खाद में प्रयुक्त दलहनी फसलों का महत्वः

(1) दलहनी फसलों की जड़े गहरी तथा मजबूत होने के साथ–साथ भूमि को पत्तियों एवं तनों से ढक लेती हैं, जिससे मृदा क्षरण कम होता है।

(2) मिट्टी में जीवांश पदार्थों की काफी मात्रा एकत्रित करती हैं।

(3) दलहनी फसलों में राइजोबियम जीवाणुओं द्वारा 60 किग्रा नाईट्रोजन/प्रति हेक्टेयर स्थिर करने की क्षमता होती है।

(4) दलहनी फसलों से मिट्टी के भौतिक एवं रसायनिक गुणों में प्रभावी परिवर्तन होता है जिससे सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता एवं आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है।

हरी खाद के लिये उपयुक्त फसल का चुनाव

(1) फसल शीघ्र वृद्धि करने वाली हो।

(2) ऐसी फसल जिसमें तना, शाखाएं और पत्तियाँ कोमल एवं अधिक हो जिससे मिट्टी में शीघ्र अपघटन होकर अधिक से अधिक जीवांश तथा नाईट्रोजन मिल सके।

(3) मुसला जड़ों वाली फसल हो जिससे गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण कर सके। ऊसर भूमि में गहरी जड़ों वाली फसल अतः जल निकास बढ़ाने में सहायक होती है।

(4) दलहनी फसलों की जड़ों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु ग्रन्थियाँ वातावरण में मुक्त नाइट्रोजन का योगीकरण द्वारा पौधों को उपलब्ध कराती हों।

(5) फसल सूखा अवरोधी के साथ–साथ जल भराव को भी सहन करती हो।

(6) रोग एवं कीट के प्रति सहनशील तथा बीज उत्पादन अधिक हो।

(7) हरी खाद के साथ–साथ फसलों को अन्य उपयोग में भी लाया जा सके।

हरी खाद के लिये दलहनी फसलों में सनई, ढैंचा, उर्द, मूँग, मसूर, मटर, लोबिया, मोठ, खेसारी, बरसीम तथा कुल्थी मुख्य है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में जायद में हरी खाद के रूप में प्रायः सनई ढैंचा, उर्द एवं मूँग का प्रयोग किया जाता है।

हरी खाद के लिए उन्नतशील प्रजातियों में ढैंचा

*एसएमएस शस्य विज्ञान, केवीके, मनकापुर गोण्डा, **एसएमएस, केवीके, गाजीपुर, ***वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष केवीके मनकापुर गोण्डा

ढैंचा–1, हिसार ढैंचा–1, सनई नरेन्द्र सनई–1, के–12, अंकुर स्वास्तिक एवं शैलेष मुख्य हैं।

उर्वरक प्रबन्धन

दलहनी फसलों में भूमि से सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए विशिष्ट राइजोबियम कल्चर से बीज उपचारित कर बुआई करें। कम एवं सामान्य उर्वरता वाले मिट्टी में 10–15 किग्रा नाईट्रोजन तथा 40–50 किग्रा फास्फोरस प्रति हेक्टेयर के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली प्रमुख फसलें

सनई

बलुई अथवा दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। सनई की बुआई मई से जुलाई तक की जा सकती है। शुद्ध फसल में 80–90 किग्रा एवं मिश्रित फसल में 30–40 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। यह तेज वृद्धि तथा मूसली जड़ वाली फसल है, जो खरपतवारों को दबाने में समर्थ है। बुआई के 40–50 दिन बाद इसको खेत में पलट देते हैं।

ढैंचा

यह सभी प्रकार की जलवायु तथा मृदा दशाओं में सफलतापूर्वक उग जाती है। जलमग्न दशाओं में भी यह 1.5 से 1.8 मीटर की ऊँचाई कम समय मे ही पा लेती है। यह फसल एक सप्ताह तक 60 सेमी तक जल भराव सहन कर लेती है। इन दशाओं में ढैंचा के तने से पार्श्व जड़े निकल आती हैं जो उसे तेज हवा चलने पर भी गिरने नहीं देती। अंकुरण होने के बाद सूखे को सहन करने की भी क्षमता रखती है। इसे क्षारीय तथा लवणीय मृदाओं में भी उगाया जा सकता है। हरी खाद के लिए प्रति हेक्टेयर 60 किग्रा ढैंचे के बीज की आवश्यकता होती है। धान रोपाई से पूर्व ढैंचा की पलटाई से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं।

उर्द एवं मूँग

उत्तम जल निकास वाली हल्की बलुई या दोमट मृदाओं में जायद एवं खरीफ में बोया जा सकता है। फलियों को तोड़ने के बाद खेत में हरी खाद के रूप में पलट कर उपयोग में लाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में हरी खाद के लिए इनका आंशिक रूप में प्रयोग किया जाता है। बुवाई हेतु प्रति हेक्टेयर 15–20 किग्रा मूँग/उर्द बीज की आवश्यकता होती है।

लोबिया

इस दलहनी फसल को सिंचित क्षेत्रों में आंशिक रूप से हरी खाद के रूप में उगाया जाता है। यह बहुत मुलायम होती है। इसे अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मृदाओं में उगाया जाता है। जल भराव को यह फसल सहन नहीं कर पाती है। एक हेक्टेयर में 25–35 किग्रा बीज की बुआई करके 15–18 टन हरा पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है।

हरी खाद देने की विधियाँ

(1) **हरी खाद की स्थानिक विधि (इन सीटू):** इस विधि में हरी खाद की फसल को उसी खेत में उगाया जाता है जिसमें हरी खाद का प्रयोग करना होता है। यह विधि समुचित वर्षा अथवा सुनिश्चित सिंचाई वालें क्षेत्रों में अपनाई जाती है।

(2) **हरी पत्तियों की हरी खाद:** कम वर्षा वाले क्षेत्रों में हरी पत्तियों एवं कोमल शाखाओं को तोड़कर खेत में फैलाकर, जुताई द्वारा मृदा में दबाया जाता है जो मिट्टी में थोड़ी नमी होने पर भी सड़ जाती है। ●

हरी खाद की फसलों की उत्पादन क्षमता

सारिणी–1

हरी खाद वाली फसलों में पोषक तत्वों की मात्रा

फसल	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हे.)	नत्रजन (प्रतिशत)	प्राप्त नत्रजन (किग्रा/हे.)
सनई	20–30	0.43	86–129
ढैंचा	20–25	0.42	84–105
उर्द	10–12	0.41	41–49
मूँग	8–10	0.48	38–48
ग्वार	20–25	0.34	68–85
लोबिया	15–18	0.49	74–88
कुल्थी	8–10	0.33	26–33
नील	8–10	0.78	62–78

चौलाई की वैज्ञानिक खेती कैसे करें

डॉ सत्यप्रकाश* एवं डॉ एके सिंह**

चौलाई पत्तियों वाली सब्जियों की मुख्य फसल है। यह फसल भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाती है। चौलाई की फसल भारत में गर्मियों में उगाई जाती है। चौलाई की विभिन्न अलग–अलग किस्में हैं जो कि वर्षा ऋतु व ग्रीष्म ऋतु में पैदा की जाती है। चौलाई को भारत के शहरी क्षेत्रों के आसपास अधिक उगाया जाता है। चौलाई की पत्तियाँ तथा मुलायम तने को तोड़ कर खाने के प्रयोग में लाया जाता है। इसकी पत्ती व तना को अलग–अलग मिलाकर अन्य सब्जी आलू के साथ तथा भूजी के रूप में एवं दोनों भूनकर मिठाई के लड्डू के रूप में प्रयोग किया जाता है। पत्तियों व तना को बहुत अधिक पोषक तत्वों के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। कुछ पोषक तत्व प्रोटीन, खनिज तथा विटामिन्स ए.वी.सी.के. लिए यह मुख्य फसल है। अन्य पोषक तत्वों के अतिरिक्त इनमें कैलोरीज, मैग्नीशियम, सोडियम, लोहा तथा कार्बोहाइड्रेटस की अधिक मात्रा पायी जाती है।

जलवायु

चौलाई की खेती के लिए गर्मतर जलवायु की आवश्यकता होती है। यह फसल अधिक गर्मियों व बरसात के मौसम में उगायी जाती है। गर्म दिन वृद्धि के लिए अच्छे रहते हैं।

भूमि एवं खेत की तैयारी

चौलाई के लिए सर्वोत्तम हल्की बलुई दोमट भूमि रहती है। वैसे यह फसल लगभग सभी प्रकार की भूमि में पैदा की जा सकती है। यह क्षारीय व अम्लीय भूमि में पैदा नहीं होती है। भूमि का पी.एच. मान 6.0–7.0 के बीच का उत्तम रहता है। भूमि की तैयारी के लिए खेत को अच्छी तरह से घास रहित करना चाहिए । पहले 2–3 जुताइयाँ ट्रैक्टर–हैरो या मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए तथा बाद में घास सूखने के बाद ट्रिलर या देशी हल से 1–2 बार जुताई करके खेत को तैयार कर लेना चाहिये तथा मेड़बंदी करके छोटी–छोटी क्यारियाँ बना देनी चाहिए। क्यारियों की बीच सिंचाई की नालियाँ बनाना चाहिए जिससे बाद में पानी लगाने में सुविधा रहे। यह फसल अन्य फसल के साथ भी लगाई जा सकती है। गृहवाटिका में अलग–अलग सब्जियाँ बोई जाती हैं। इसलिये गृह–वाटिका की पत्तियों वाली गर्मी की यह एक मुख्य फसल है जो कि कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन देती है। बगीचों की यह एक मुख्य फसल है जो कि कम समय में ही पत्तियाँ देने लगती है। चौलाई को गमलों में भी लगाया जा सकता है। यह कम क्षेत्रों के कारण गमलों में उगाकर पैदा की जा सकती है। कुछ जातियाँ सजावट के लिये भी अच्छी होती हैं। इसे दूसरी फसल के साथ भी बोते हैं। इसको अन्य फसल की मेड़ों पर भी लगाकर उगाया जा सकता है।

गोबर की खाद एवं उर्वरकों की मात्रा का प्रयोग

चौलाई की फसल के लिए गोबर की खादयुक्त भूमि की आवश्यकता होती है। देशी खाद 15–20 ट्राली प्रति हेक्टेयर की दर से डालना चाहिए तथा रसायनिक उर्वरक नत्रजन 20–25 किग्रा डाई अमोनियम फास्फेट 80–100 किग्रा प्रति हेक्टेयर में देना चाहिए। फास्फेट तथा आधी नत्रजन की मात्रा को भूमि तैयार करते समय मिला देना चाहिए तथा शेष 12–15 किग्रा नत्रजन की मात्रा को हिस्सों में बांटकर प्रत्येक तुड़ाई या कटाई के बाद देना चाहिए जिससे फुटाव शीघ्र आ सके।

उन्नतशील जातियाँ

अपने देश में चौलाई की अनेक किस्में उगायी जाती है। इनमें मुख्यतः दो किस्में का प्रयोग अधिक करते हैं जिसकी अच्छी उपज मिलती है, जो निम्नलिखित है।

*बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, **फसल कार्यिकी विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

(1) बड़ी चौलाई

यह किस्म अधिक उपज देने वाली, पत्तियाँ बड़ी, मुलायम तथा काँटे रहित होती हैं, तना हरा, मध्यम मोटा व मुलायम होता है। फूल गुच्छे में शीर्ष पर मध्यम आकार के होते हैं । यह बुआई से 35–40 दिन के बाद तैयार हो जाती है। इस जाति के पौधे बड़े आकार के होते हैं।

(2) छोटी चौलाई

इस जाति की पत्तियों का रंग हरा होता है, जो छोटे–छोटे पौधों पर लगती है। पत्तियाँ भी छोटी, तना मुलायम होता है। तुड़ाई के बाद शीघ्र वृद्धि करती है।

उपरोक्त जातियों के अतिरिक्त हरी किस्में अधिक हैं। लेकिन लाल पत्तियों वाली केवल एक ही किस्म हैं जो कि बाजार में आसानी से मिल जाती है। इन किस्मों के अतिरिक्त और भी किस्में हैं। कोयमबस–1, कोयम्बटूर–2।

बुआई का समय एवं दूरी

चौलाई की बुआई दो मौसम में की जाती है। प्रथम बुआई फरवरी से मार्च के मध्य तक करते हैं। इससे गर्मियों में पत्तियाँ खाने को मिलती हैं तथा वर्षा ऋतु की बुआई का समय जुलाई का महीना सबसे अच्छा होता है, इससे वर्षा ऋतु के मौसम में पत्तियाँ खाने को मिलती हैं। बुआई के समय कतारों में फसलों को बोना चाहिए। कतार से कतार की दूरी बड़ी चौलाई के लिए 25–30 सेमी तथा छोटी चौलाई की कतारों की दूरी 15–20 सेमी तथा पौधे से पौधे की 5–10 सेमी रखनी चाहिए। बड़ी चौलाई के पौधे 10 सेमी के अन्तर तथा छोटी के 5 सेमी के अन्तर से रखना चाहिए। बीज की गहराई केवल 1–2 सेमी पर रखने से अंकुरण सही होता है।

बीज की मात्रा एवं बोने का तरीका

चौलाई की बीज दर किस्म पर एवं बीज के आकार व बुआई के समय पर निर्भर करती है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर बीज 2.5 किग्रा से 3.0 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बोते हैं। बीज हल्का व छोटा होने के कारण चींटी आदि द्वारा भी नष्ट हो जाता है। इसलिये बीज की मात्रा कम नहीं होनी चाहिए, बगीचे, गृहवाटिका या गमलों में चौलाई को बोया जाता है तो अच्छी किस्म का बीज बोना चाहिए। जिससे अधिक उपज मिले । 8–10 वर्ग मी क्षेत्र के लिए बीज की मात्रा 20–25 ग्राम पर्याप्त होती है। गमलों में 4–5 बीज छेद विधि से बोने चाहिए तथा बाद में 2–3 पौधे रखने उचित होते हैं। अन्य पौधों को किसी दूसरे गमलों में लगाया जा सकता है। बीजों को बगीचे में कतारों में 15 सेमी की दूरी पर बोना चाहिए। पौधों की दूरी 5–8 सेमी रखनी चाहिए।

सिंचाई

चौलाई की सिंचाई मौसम के आधार पर की जाती है। गर्मी वाली फसल की सिंचाई 5–6 दिन के अन्तर से करनी चाहिए तथा वर्षा ऋतु की सिंचाई वर्षा न होने पर नमी आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। बोने से पहली सिंचाई 15–20 दिन के बाद करनी चाहिए।

निकाई–गुड़ाई

चौलाई की फसल में सिंचाई के बाद खरपतवार तथा अन्य घास हो जाती है। फसल को निकालना अति आवश्यक हो जाता है, क्योंकि पोषक तत्वों को खरपतवार ही सोख लेते हैं और फसल कमजोर हो जाती है। इसलिए निकाई–गुड़ाई कर सभी खरपतवारों को खेत से बाहर निकाल देना चाहिए तथा साथ–साथ पौधों की थिनिंग भी करते रहना चाहिए। पौधों की आपस की दूरी सही रखनी चाहिए। फालतू पौधों को खाली जगह यदि हो तो वहाँ पर लगा देना चाहिए। इस प्रकार से शुरू में दो निकाई–गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए जिससे खरपतवार नहीं आ सके।

कीट एवं उन का नियन्त्रण

चौलाई पर भी अन्य पत्तियों वाली फसल की तरह कीट लगते हैं। अधिकतर कीट मेथी जैसे होते हैं।

पत्तियों को काटने वाला कैटरपिलर

यह कीट अधिकतर पत्तियों के रस को चूसता है तथा बाद में पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और अन्त में सूख जाती हैं। नियंन्त्रण के लिए जैसे ही थोड़े कैटरपिलर पौधों पर दिखाई दें तो उन पौधों को उखाड़ देना चाहिए तथा जला देना चाहिए।

ग्रास हापर

यह कीट भी पत्तियों के रंग जैसा हरा होता है। यह दिखाई नहीं देता, छिपकर फसल को क्षति पहुँचाता है। मुलायम तना तथा पत्तियों को काटता है। नियंन्त्रण के लिये खेत में खरपतवार नहीं होना चाहिए। इनका साफ खेत पर कम आक्रमण होता है।

बीमारी

चौलाई पर बीमारी कम लगती है। देर से बोई जाने वाली फसल पर पाउडरी मिल्डयू आती है, इसलिए नियन्त्रण के लिए समय से बुआई करनी चाहिए।

फसल की तुड़ाई

फसल की तुड़ाइ बुआई से 20–25 दिनों के बाद ही आरम्भ कर देनी चाहिए। बड़ी चौलाई के पत्ते शीघ्र बड़े हो जाते हैं। लेकिन छोटी चौलाई की 6–7 बार कटाई की जाती है। चौलाई के मुलायम तनों की शाखाओं को तोड़ना चाहिए। इस प्रकार से जो भी किस्म लगाई हो 5–6 तुड़ाई आराम से की जा सकती है, बाद में तना कठोर होने पर न तोड़कर बीज पकाने के लिए शीर्ष को छोड़ देना चाहिए। फरवरी में बोई गई फसल अप्रैल में पत्तियाँ देने लगती है तथा चौलाई की फसल अक्टूबर में तैयार हो जाती है। शीर्ष जब परिपक्व होने लगे तो अधिक पकने से पहले ही हेडों को एकत्र कर लेना चाहिए अन्यथा बीज खेत में ही गिर सकते हैं। बगीचों व गमलों की फसल भी 15–20 दिन में तैयार हो जाती है। समय–समय पर ताजा साग, पकौड़े बनाने के लिये गृहवाटिका से पत्तियां तोड़नी चाहिए। इस प्रकार से 5–6 तुड़ाई मिल जाती हैं। बाद में हेडों को बीज के लिए छोड़ देना चाहिए। सूख कर गिरने से पहले ही हेड को काट लेना चाहिए। सुखा कर चौलाई का बीज तैयार कर लेना अच्छा रहता है।

उपज

चौलाई की पैदावार सही देखभाल के बाद पत्तियाँ औसतन 70–80 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती हैं तथा बीज 3–4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त हो जाता है। बगीचों में हरी पत्तियां जाति के अनुसार 15–20 किग्रा 8–10 वर्ग मीटर क्षेत्र में मिल जाती है तथा 500–800 ग्रा बीज की प्राप्ति हो जाती है। बीज के हेडों को सावधानी से सुखाकर बीज निकालना चाहिए। छोटा बीज होने के कारण गिरने का भय रहता है। ●

(पृष्ठ 06 का शेष)

(3) मेन्थॉल मिन्ट की खेती एक अन्तः फसल के रूप में की जाये जिससे यह मुख्य फसल के अलावा एक बोनस फसल के रूप में उभर कर आये।

उपरोक्त सन्दर्भ में पिछले दशकों में विभिन्न उन्नतशील किस्मों का विकास केन्द्रीय संस्थाओं द्वारा किया गया है, जिनमें से कोसी एवं सरयू किसानों के लिए आर्थिक दृष्टि से वरदान सिद्ध हुयी है। ऐसी तकनीकी का भी विकास किया गया है जिसके द्वारा समय, संसाधनों एवं लागत में कमी के साथ–साथ उत्पादन बढ़ाया जा सके। इसी कड़ी में मेन्थॉल मिन्ट की खेती के लिए तकनीको का विकास भी किया गया है, जिनमें यह फसल एक अन्तः फसल के रूप में उगायी जा सकती है। इन पद्धतियों में, क्योंकि यह फसल एक अतिरिक्त या बोनस फसल के रूप में ली जाती है, इसलिये तेल की उत्पादन कीमत बहुत कम आती है। लेकिन किसी भी सह–फसल या अन्तः फसल को लेते समय पोषक तत्वों की मात्रा दोनों फसलों की कुल आवश्यकतानुसार बढ़ा देना आवश्यक होता है। ●

बेल से तैयार किये जाने वाले पेय पदार्थ और उनको बनाने की विधि

अंकित सिंह*, आलोक कुमार सिंह**, आनन्द कुमार पाण्डेय***, ए0के0 सिंह**** एवं आर0के0 यादव*****

बेल अत्यन्त लाभकारी औषधीय फल वृक्ष है जिसका वनस्पतिक नाम 'ऐगल मारमेलांस कोर्रिया' है। यह फल भारतीय मूल के महत्वपूर्ण फलों में से एक है जिसका पौराणिक ग्रन्थों में बड़ा वर्णन किया गया है। हमारे देश में यह फल वृक्ष उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश में जंगली वृक्ष के रूप में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश में इस बहुमूल्य फल की व्यवसायिक खेती के प्रयास किये गये हैं। बेल की उगाई जोने वाल किस्मों में मिर्जापुरी, कागजी, गौड़ा, कागजी इटावा कागजी बनारसी तथा आ0न0दे0कृषि विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या द्वारा विकसित की गई प्रजाति नरेन्द्र बेल–1, नरेन्द्र बेल–2, नरेन्द्र बेल–7, एवं नरेन्द्र बेल–9 मुख्य हैं।

बेल वृक्ष की पत्तियों का प्रयोग भगवान शिव की उपासना में भी किया जाता है। इस वृक्ष की छाल का प्रयोग उल्टी व दस्त रोकने के लिए किया जाता है। पके फलों का गूदा मीठा, स्वादिष्ट, सुगन्धित और गोंद जैसा चिपचिपा होता है जिसे बीजों की अधिकता व लसदार होने के कारण खाया नहीं जा सकता।

पके हुए फलों के गूदे प्रसंस्करण विधि द्वारा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष महत्व रखते हैं। इन उत्पादों में पेय पदार्थ का विशेष स्थान है, क्योंकि पौष्टिकता के मापदण्ड पर कृत्रिम पेय पदार्थ फलों से निर्मित पेय पदार्थ के सामने नगण्य हैं। बेल के पके फल के गूदे से निर्मित पेय पदार्थों में स्कवैश, क्रश व शरबत मुख्य हैं। फल से गूदा निकालने व विभिन्न पेय पदार्थ बनाने के लिए प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी बड़ी सरल है, जिसकी किसानों के बीच प्रसार प्रचार की अति आवश्यकता है, जिससे इस बहुमूल्यवान फल के औषधीय व पौष्टिक गुणों से सभी लाभान्वित हो सकें।

बेल से गूदा निकालना तथा पेय पदार्थ की विधि

गूदा/रस निकालना

मार्च अप्रैल से जून माह में पके हुए फलों को साफ पानी से धोकर किसी ठोस धरातल पर मारकर तोड़ें और एक स्टील के बड़े चम्मच. द्वारा फलों से गूदा इकट्ठा करके एक किग्रा बेल के गूदे में एक लीटर पानी डालकर मिलाएं और आँच पर 70–80 से0ग्रे0 तक गर्म करें। गर्म किये हुये मिश्रण को फल गूदा निकालने वाली मशीन या स्टेनलेस स्टील की छलनी या मलमल के कपड़े द्वारा छानकर बीज व रेशे रहित एक सा गूदा एकत्रित करें। तैयार बेल गूदे से विभिन्न पेय पदार्थ बनाए जा सकते हैं।

(1) बेल स्कवैश

बेल का स्कवैश पके हुए गूदा व चीनी, सिट्रिक अम्ल और परनी से बने शरबत को मिलाकर तैयार किया जाता है। बेल स्कवैश की गर्मियों में बहुत मांग रहती है।। इसमें फल भाग कम से कम 25 प्रतिशत, कुल घुलनशील पदार्थ कम से कम 40 प्रतिशत व खटास 1.0 प्रतिशत होनी चाहिए।

बेल स्कवैश बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

बेल गूदा/रस–1लीटर

पानी–750 मिली

चीनी–1.5 किग्रा

सिट्रिक अम्ल–20 ग्राम

सोडियम बेंजोएट–1 ग्राम प्रति लीटर स्कवैश

सामग्री अनुसार आवश्यक चीनी, सिट्रिक अम्ल व पानी को मिलाने के पश्चात् एक उबाल शरबत से मैल हटाकर मलमल के कपड़े द्वारा छान लें। शरबत ठंडा होने पर उसमें बेल रस को मिलाएं। थोड़े से पानी में सोडियम बेंजोएट नामक परिक्षक मिलाऐं तथा मनपसंद थोड़ा सा नारंगी लाल रंग अच्छी तरह से मिलाकर तैयार बेल स्कवैश में मिला दें तथा मलमल के कपड़े द्वारा छान कर कीटाणु रहित 700 मिली क्षमता वाली बीयर बोतल या स्कवैश बोतलों में ऊपर

*फसल कार्यिकी विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि0वि0, कुमारगंज, अयोध्या।

से 2.5 से 3.0 सेमी भाग छोड़कर भर दें। भरी हुई बेल स्कवैश की बोतलों को तुरन्त कैपसीलर मशीन से सीलबंद करके शुष्क व ठंडे स्थान पर भण्डारण करें। उपयोग करते समय एक भाग स्कवैश से साढ़े तीन भाग ठंडा पानी मिलायें। स्कवैश की बोतल को भी बेल स्कवैश प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह हिला लेना चाहिए।

(2) बेल क्रश

बेश क्रश भी बेल स्कवैश की तरह पेय पदार्थ है। बेल क्रश में फल भाग 25 प्रतिशत, कुल ठोस विलेय पदार्थ 55 प्रतिशत व कुल अम्ल या खटास 1.0 प्रतिशत होना चाहिए।

बेल क्रश बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

बेल गूदा रस	–	1 लीटर
चीनी	–	1.9 किग्रा
सिट्रिक अम्ल	–	30 ग्राम
पानी	–	1 लीटर
सोडियम बेंजोएट	–	1ग्राम/लीटर

बेल क्रश बनाने की विधि बेल स्कवैश बनाने की तरह ही हैं अंतर केवल प्रयोग होने वाली सामग्री का है। सेवन करते समय बेल क्रश की बोतल के सतह पर एकत्रित गूदे को मिलाने के लिए बोतल को अच्छी तरह हिलाएं और एक भाग बेल क्रश के लिए चार भाग ठंडे पानी का प्रयोग किया जाता है।

(3) बेल शरबत

बेल शरबत में फल भाग कम से कम 20 प्रतिशत, कुल ठोस विलेय पदार्थ 65 प्रशित व कुल अम्ल 1.3 प्रतिशत से 1.5 प्रतिशत होना चाहिए। इसमें मन पसंद रंग व सुगन्ध भी मिलाई जा सकती है। लेकिन परिक्षक पदार्थ का प्रयोग तभी करें जब इसे लंबे समय तक सुरक्षित रखना हो।

बेल शरबत बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

बेल रस	–	1लीटर
सिट्रिक अम्ल	–	30 ग्राम
चीनी	–	2 किग्रा
पानी	–	0.5 लीटर

बेल शरबत बनाने की विधि बेल स्कवैश बनाने की विधि की तरह ही है। अंतर केवल प्रयुक्त होने वाली आवश्यक सामग्री का है। बेल शरबत प्रयोग करते समय एक भाग शरबत में पांच भाग ठंडा पानी मिलायें।

बेल से बनाये जाने वाले पेय पदार्थ बनाने में सावधानियाँ

(1) बेल से रस निकाल लेने के बाद जितनी जल्दी हो उसे परिरक्षित कर लेना चाहिए। अधिक समय तक रखने से इसके गुणों का ह्रास होने लगता है।

(2) पेय बनाते समय रस को पकाया नहीं जाता है, बल्कि चीनी चाशनी को पका कर छानकर कमरे के तापमान पर ठण्डा कर लेने के बाद इसमें रस मिलाया जाता है, ऐसा करने से रस के पोषक तत्वों का ह्रास नहीं होता।

(3) स्कवैश, शरबत तथा क्रश आदि पेय पदार्थ को बोतल में भर लेने के बाद ढक्कन को सील बन्द करना आवश्यक होता है, अन्यथा परिरक्षित पदार्थ उड़ जाता है तथा पेय पदार्थ में फफूंदी लग जाती है।

(4) परिरक्षी पदार्थ को थोड़े से पानी या पेय पदार्थ में अच्छी तरह घोल कर चाशनी के ठण्डा हो जाने के बाद मिलाना चाहिए, गरम चाशनी मिला देने से परिरक्षी गैस उड़ जाती है।

(5) पेय पदार्थ की बोतल को एक बार खोलने के बाद पेय पदार्थ को 5–6 दिन के अन्दर प्रयोग में ले लेना चाहिए अन्यथा इसमें फफूंदी लग सकती है।

(6) बोतल खोलने से पहले पेय पदाथ अच्छी तरह हिला लेना चाहिए।●

कीटनाशक दवाओं का सुरक्षित रख-रखाव

रविन्द्र नाथ निषाद*, सूरज कुमार* एवं कृष्ण कुमार**

फसलों पर कीट का प्रकोप होना आम बात है। इन कीट से निपटने के लिए ज्यादातर किसान रासायनिक कीटनाशक का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन जिस तरह से दुनियाभर में केमिकल और पेस्टिसाइड का अंधाधुध प्रयोग हुआ है, उसने खेती और इंसान दोनो को बहुत नुकसान पहुचाया है। आज के इस आधुनिक युग की खेती में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रसायनों का प्रयोग अधिक किया जा रहा है। आमतौर पर कीटनाशी विष बहुत ही घातक होते हैं। इनका इस्तेमाल व रख–रखाव बेहद सावधानीपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि जरा सी असावधानी होने पर बड़ा जोखिम उठाना पड़ सकता है। कीटनाशक का असावधानी से व अंधाधुंध इस्तेमाल करने से इंसान, मित्र कीट, पालतू जानवर व पेड़–पोधों के साथ–साथ पर्यावरण पर भी घातक प्रभाव पड़ता है। इसलिये कुछ बातों को ध्यान रखने के साथ–साथ इनके प्रयोग के समय क्या–क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए, इसकी जानकारी किसान भाईयो को होना बहुत जरूरी है। कीटनाशकों के घटक प्रभावों से बचाने के लिए आवश्यक है कि उन पर लिखे हुये निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ कर पालन करें। आपको जिस बात पर सबसे ज्यादा ध्पान देने की आवश्यकता है वो है कीटनाशक के छिड़काव के समय अपनी सुरक्षा करने का। कीटनाशक के छिड़काव के समय अगर आप कुछ सावधानियाँ बरतेंगे तो इससे होने वाले दुष्प्रभाव से काफी हद तक बचा जा सकता है।

कीटनाशकों का भण्डारण

(1) घर में कीटनाशक कभी भी न रखें।

(2) इसके असली कंटेनर में ही रखें और कंटेनर को ठीक से बंद करें।

(3) दूसरे कंटेनर में कीटनाशक न डालें।

(4) कीटनाशक को ऐसी जगह न रखें जहाँ खाना या चारा रखा हो।

(5) कीटनाशकों का संग्रह बच्चों और पशुओं के पहुंच से दूर के स्थानों पर करना चाहिए।

(6) पानी और सूरज की रोशनी की पहुँच से दूर रखें।

(7) कीटनाशक और घास फूस नाशक को एक साथ न रखें।

कीटनाशक का घोल तैयार करते समय सावधानियाँ

- छिड़काव करने के लिए हमेशा साफ पानी का ही इस्तेमाल करना चाहिए।
- हमेशा अपने हाथ, नाक, आँख, कान और मुँह को ढकें रहना चाहिए।
- हाथ को ढकने के लिए पॉलीथीन बैग्स से बने दस्ताने पहने, सिर को कैप या तौलिये से ढके और चेहरे को रूमाल, साफ कपड़े या मास्क से ढकें।
- घोल तैयार करने से पहले कंटेनर के ऊपर लिखे निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ें, उसपे घोल तैयार करने का तरीका लिखा होता है।
- संद्रित कीटनाशक को खोलते समय विशेष ध्यान रखें कि वो आपके हाथ पर न गिरे।
- छिड़काव टैंक को कभी नहीं सूंघना चाहिए।
- छिड़काव टैंक को भरते समय ध्यान रखें कि कीटनाशक जमीन पर न फैले।
- दानेदार कीटनाशक का प्रयोग उसी रूप में करना चाहिए।
- कीटनाशकों का छिड़काव करने समय कुछ भी

*शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग, **पादप रोग विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

खाना, पीना, धूम्रपान नहीं करना चाहिए।

- कीटनाशक घोल को शरीर के किसी भी भाग पे गिरने नहीं देना चाहिए।

उपकरण का चयनः

- लीक कर रहे या खराब उपकरण का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
- नोजल सही होनी चाहिए।
- कभी भी नोजल को मुंह से फूक कर साफ नहीं करना चाहिए। इसके लिए स्प्रेयर से बंधें पुराने टूथ ब्रश का उपयोग करना चाहिए और पानी से साथ करना चाहिए।
- घासफूस नाशक और कीटनाशक को कभी भी एक ही स्प्र उपकरण से छिड़काव नहीं करना चाहिए।
- खाली कीटनाशक कंटेनर को किसी भी दूसरे काम से इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
- सही आकार की नलिकाओं का इस्तेमाल करना चाहिए।

छिड़काव से पहले सावधानियाँ

- कीटनाशक दवाओं को कभी भी नंगे हाथों से नहीं छूना चाहिए।
- कीटनाशक का उपयोग करते समय पैकिंग को खुली हवा में ही खोलना चाहिए।
- पानी में दवा की सही मात्रा को ही मिलाना चाहिए।
- पैकिंग खोलते समय दवा लीक नहीं होनी चाहिए।
- छिड़काव के लिये खुली व हवादार जगह पर मिश्रण तैयार करना चाहिए।
- मिश्रण तैयार करने के लिये गहरे बरतन का इस्तेमाल करना चाहिए।
- हमेशा डंडे की मदद से हिलाते हुऐ मिश्रण तैयार करना चाहिए।
- दो या अधिक कीटनाशक एक साथ नहीं मिलाने चाहिए।
- छिड़काव से पहले स्प्रेयर में पानी भर कर उसके लीकेज की जाँच कर लेनी चाहिए।
- घोल बनाने के बाद हाथ पैर को साबुन से धो लेना चाहिए।

छिड़काव करते समय सावधानियाँ

- कृषि वैज्ञानिक द्वारा बताई गई या कीटनाशक के कंटेनर पर लिखी मात्रा में ही छिड़काव करना चाहिए।
- जब दिन बहुत गर्म हो या तेज हवा चल रही हो तब कीटनाशक का छिड़काव नहीं करना चाहिए।
- हमेशा हवा के 90 डिग्री कोण पर छिड़काव करना चाहिए।
- जब बारिश होने वाली हो तब या बारिश होने के तुरन्त बाद छिड़काव नहीं करना चाहिए।
- नोजल की ऊँचाई करीब डेढ़ फुट रखना चाहिए व इधर–उधर नहीं घुमाना चाहिए।
- कीटनाशक का घोल बनाने के लिए जिस कंटेनर या बाल्टी का इस्तेमाल करते हैं, उसे दुबारा कभी किसी घरेलू काम में उपयोग नहीं करना चाहिए।
- कीटनाशक के छिड़काव के बाद जानवर या किसी को भी खेत में नहीं जाने देना चाहिए।
- कभी भी खाली पेट छिड़काव नहीं करना चाहिए।
- कीटनाशक तैयार करते समय जिस तरह शरीर को ढका जाता है, उसी तरह इसका छिड़काव करते वक्त भी ढके रहना चाहिए।

छिड़काव के बाद सावधानियाँ

- बचे हुये कीटनाशक को सुरक्षित भंडारित कर देना चाहिए।
- छिढ़काव करने के बाद बचे हुए कीटनाशक को कभी भी किसी तालाब, कुएं आदि या किसी भी पानी के स्रोत में न बहायें बल्कि कोशिश करें कि इसे किसी ऐसे बंजर जमीन पर फेकें जहाँ किसी

(शेष पृष्ठ 19 पर)

कद्दू वर्गीय प्रमुख रोगों का प्रबंधन करके अधिक लाभ कमाऐं

कृष्ण कुमार* सूरज कुमार**, अक्षय कुमार*** एवं अजीत कुमार***

कद्दूवर्गीय सब्जियों की उपलब्धता साल में लगभग 8–10 महीने रहती है। इनका उपयोग सलाद (खीरा, ककड़ी) पकाकर सब्जी के रूप में (लौकी, तोरई, करेला, काशीफल, परवल, छप्पन कद्दू), मीठे फल के रूप में (तरबूज, खरबूजा), मिठाई बनाने में (पेठा, परवल, लौकी) तथा अचार बनाने में (करेला) प्रयोग किया जाता है। इन सब्जियों में कई प्रकार के रोग लगते हैं जिससे इनकी उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन फसलों में लगने वाले रोगों के लक्षण तथा उनके नियंत्रण के उपायों का उल्लेख निम्न प्रकार है–

फफूँद द्वारा होने वाले मुख्य रोग

मृदुरोमिल आसिता

इस रोग के लक्षण में पत्ती की ऊपरी सतह पर हल्के पीले कोणीय धब्बे दिखाई देते हैं, बाद में पत्ती की निचली सतहज पर मृदरोमिल फफूँद बैंगनी रंग की दिखाई देती है। फल आकार में छोटे हो जाते हैं। रोगी पौधों के पीले धब्बे शीघ्र ही लाल भूरे रंग के हो जाते हैं।

रोग का उपचार

- फसल के पकने के बाद फसल के अवशेषों को जला देना चाहिए।
- खड़ी फसल पर मैन्कोजेब का 0.2 प्रतिशत की दर से छिड़काव करने से इस बीमारी को कम कर सकते हैं।
- रोग रोधी प्रजातियाँ उगानी चाहिए।

चुर्णिल आसिता

रोग ग्रसित पौधों की पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद या धुंधले धूसर, गोल व चूर्ण रूप में छोटे धब्बे बनते हैं, जो बाद में पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं। पत्तियों व फलों का आकार छाटा व विकृत हो जाता है। तीव्र संक्रमण होने पर पत्तियाँ गिर जाती हैं व पौधों का असमय निष्पत्रण हो जाता है।

रोग का उपचार

- रोग ग्रसित पौधों के अवशेषों को नष्ट करना चाहिए।
- रोग की प्रारम्भिक अवस्था पर कैराथिन (1 ग्राम/लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

श्यामवर्ण (एन्थ्रेक्नोज)

इस रोग के लक्षण पत्तियों व फलों पर प्रकट होते हैं। शुरू में पत्तियों पर पीले, गोल जलयुक्त धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े व भूरे हो जाते हैं। रोगी पत्तियां सूख जाती हैं। फलों पर धब्बे गोलाकार जलयुक्त व हल्के रंग के होते हैं। खीरा, खरबूजा व लौकी की पत्तियों पर कोणीय या खुरदरे गोल धब्बे दिखाई देते हैं, जो पत्ती के बड़े भाग या पूरी पत्ती को झुलसा देती हैं।

रोग का उपचार

- कद्दू कुल के जंगली पौधों को इकट्ठा कर नष्ट करना चाहिए।
- बीज को थाइरम या बाविस्टीन (2 ग्राम/किग्रा बीज) से उपचारित करके बोना चाहिए।
- मैन्कोजेब (2ग्राम/लीटर पानी) का सात दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती झुलसा

सर्वप्रथम पत्ती पर हल्के भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में गहरे रंग के व आकार में बड़े हो जातें हैं। धब्बे पत्तियों पर केन्द्रीयकृत गोल आकार में बनते हैं जिससे पौधे की पत्तियाँ झुलसी हुई दिखाई देती है।

*पी.एच.डी. छात्र, **शोध छात्र, शोध छात्र उद्यान विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

रोग का उपचार

- स्वस्थ बीज का प्रयोग करें।
- फसल चक्र अपनायें
- फसल पर इंडोफिल एम–45 (2–3 ग्राम/लीटर पानी) का 10–15 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

म्लानि (विल्ट)

इसमें पौधा मुरझा कर सूख जाता है, पत्तियां पीली हो जाती हैं, कॉलर वाला क्षेत्र सिकुड़ जाता है, पौधों की जड़ें व भीतरी भाग भूरा हो जाता है तथा पौधों की वृद्धि रुक जाती है। लक्षण सबसे स्पष्ट फूल आने व फल बनने की अवस्था पर ज्यादा दिखाई देते हैं।

रोग उपचार

- रोग रोधी प्रजातियाँ उगानी चाहिए।
- भूमि सौदर्यीकरण करने से भी इस बीमारी को कम कर सकते हैं।
- बोने से पहले बीज को बाविस्टीन (1–2 ग्राम/लीटर पानी) से उपचारित करें तथा बीमारी आने के बाद ड्रेन्चिंग भी करें।

विषाणु जनित होने वाले मुख्य रोग

कुकुम्बर मोजेक

पौधे छोटे रह जाते हैं तथा ग्रसित पौधों की नयी पत्तियां छोटी, पीले धब्बे दिखते हैं, पत्तियाँ सिकुड़ कर मुड़ जाती है तथा एक पीला मौजेक या मोटिल क्रम दिखाई देता है जिससे क्लोरोटिक पैचेज दिखते हैं, कुछ फूल गुच्छों में दिखते हैं तथा फल भी छोटे व विकृत हो जाते हैं या फलत बिल्कुल नहीं होती।

रोग उपचार

- उपचारित बीज का प्रयोग करना चाहिए।
- रोग ग्रसित पौधों को (कम संख्या में) उखाड़ कर जलाना चाहिए व जंगली खरपतवारों को नष्ट करना चाहिए।
- इमिडाक्लोप्रिड (3–5 मिली/10 लीटर पानी) दवा का एक सप्ताह के अंतराल पर खड़ी फसल पर2 बार छिड़काव करें, जिससे रोग वाहक कीट नष्ट हो जाते हैं।

कलिका नेक्रोसिस

पत्तियों की शिराओं पर नेक्रोसिस धारियां बन जाती हैं, इन्टरनोड छोटे रह जाते हैं, कलिका को नेक्रोसिस हो जाती है। बाद में कलिका सूख जाती है। धीरे धीरे कलिका वाली पूरी शाखा सूखने लगती है। पत्तियां सिकुड़ कर पीली हो जाती हैं।

रोग उपचार

- रोगी पौधों के भाग को इकट्ठा करके जलाना चाहिए।
- स्वस्थ बीज बोना चाहिए।
- इमिडाक्लोप्रिड (3–5 मिली/10 लीटर) पानी की दर से 2 बार छिड़काव करना चाहिए।
- खेत के चारों ओर बाजरा की फसल उगायें जिससे बीमारी कम आती है। ●

किसान भाइयों,

लगातार फसल उगाने से मृदा के स्वास्थ्य में हो रही गिरावट के कारण कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में स्थिरता की स्थिति हो गयी है। समय रहते खेत की मिट्टी की दशा को सुधारने एवं उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि किसान भाई अपने खेत की मिट्टी की जाँच करवाने के प्रश्चात संस्तुति मात्रा में सुंतुलित उर्वरक का प्रयोग करें तथा मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य बनवायें। फसल अवशेष को न जलाएं उसका प्रबन्ध कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाएं। खेत को खाली न छोड़ें बल्कि हरी खाद हेतु सनई व ढैचा पलटकर हरी खाद बनायें। जीवांशिक खादों का अधिक से अधिक प्रयोग कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाने पर बल दें।

शिशु के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है स्वच्छता एवं स्तनपान

डॉ0 श्रीमती रेनू सिंह* एवं डॉ. श्रीमती प्रेमलता श्रीवास्तव**

शिशु के सम्पूर्ण विकास के लिए उनका स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। शिशु को स्वस्थ्य रखने के लिए उनकी स्वच्छता तथा स्तनपान पर ध्यान देना आवश्यक है।

स्वच्छता

उनके प्रत्येक अंग की सफाई नियमित रूप से होनी चाहिए, उसके लिये निम्नलिखित विधियाँ अपनानी चाहिए।

नाक, कान तथा आँख की सफाई

सामान्य अवस्था में शिशु के इस अंग को छूना नहीं चाहिए। अगर आँख में कीचड़ आ जाता है तो गुनगुने पानी में रूई भिगो कर साफ कर देना चाहिए। कान की सफाई बहुत सावधानी से कान सफाई करने वाली उपचारित तीली से करना चाहिए जिसके दोनो सिरों पर रूई का फाहा लगा रहता है। तीली को एक बार प्रयोग में लाने के बाद दुबारा प्रयोग नहीं करना चाहिए। नाक में अगर गंदगी दिखाई दे तो रूई के फाहे को फाईबर तीली पर लपेट कर सावधानी से नाक साफ करनी चाहिए।

सिर

सिर की सफाई के लिए हल्के हाथों से साबुन लगाना चाहिए फिर सिर पर लगे साबुन को धीरे–धीरे जल डाल कर सिर धो कर नरम तौलिया से हल्के हाथों से पोंछ कर सुखा देना चाहिए। अगर शिशु के सिर पर तालू के स्थान पर पपड़ी जमी हो तो स्नान के बाद थोड़ा जैतून का तेल लगा देना चाहिए।

चेहरा तथा अन्य अंगों की सफाई

चेहरा तथा अन्य अंगों की सफाई सावधानी पूर्वक साबुन के पानी से करना चाहिए। फिर सादे जल से धुलकर नरम तौलिए से थपथपा कर पोंछ कर सुखा लेना चाहिए। शिशु का कोई भी अंग गीला नहीं रहे नहीं तो त्वचा पर खराश आ जाती है। शरीर को रगड़ कर नहीं पोछना चाहिए। शरीर सूख जाने पर शरीर पर पाउडर लगाना चाहिए। शरीर के कुछ महत्वपूर्ण तह वाले अंग जैसे बांह, पांव, जांघ के मोड़ एवं नितम्ब के मोड़ पर अच्छी तरह से पाउडर लगाना चाहिए। शिशु के मल द्वार पर शिशु क्रीम लगाना चाहिए।

शिशु को प्रतिदिन जहाँ तक सम्भव हो सके स्नान कराना चाहिए। स्नान के लिए सुबह का समय उत्तम है। कोशिश करनी चाहिए कि प्रतिदिन एक निश्चित समय पर ही स्नान कराया जाए। स्नान कराने के लिए प्लास्टिक का टब अति उत्तम रहता है। प्लास्टिक का टब नरम होने की वजह से शिशु को किसी प्रकार के आघात की संभावना नहीं रहती है। शरीर पर साबुन लगाने के लिए एक स्पंज फलालेन के टुकड़े का इस्तेमाल करना चाहिए। स्नान के पश्चात् स्वच्छ वस्त्र पहनाकर शिशु को दूध पिलाना चाहिए।

स्तनपान

- जहाँ तक हो सके शिशु को स्तनपान ही कराना चाहिए। इसके लाभ निम्नलिखित हैं:–
- माता का दूध निःशुल्क होता है। यह सर्वोत्तम आहार है जो आसानी से उपलब्ध है।
- शुद्ध और जीवाणु रहित होता है।

*विषय वस्तु विशेषज्ञ/सह प्राध्यापक, गृह विज्ञान, के0वी0के0, कठौरा, अमेठी, **विषय वस्तु विशेषज्ञ/सह प्राध्यापक, गृह विज्ञान, के0वी0के0, बलिया।

- शिशु के रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है एवं पाचन क्षमता के अनुकूल होता है।
- शिशु को इससे विटामिन सी एवं थायमिन प्राप्त होता है। शिशु जन्म के बाद 2–3 दिन तक माँ के स्तनपान से जो गाढ़ा पीला पदार्थ निकलता है जिसे फेनुश या कोलेस्ट्रम कहते हैं इस दूध को पिलाने से शिशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और शरीर का पाचक एन्जाइम उत्तेजित होता है। कोलेस्ट्रम में दूध का अपेक्षा विटामिन ए व प्रोटीन अधिक मात्रा में होता है।
- माँ के दूध में शिशु के लिये सभी आवश्यक पोषक तत्व उपयुक्त अनुपात में पाये जाते हैं। इसमें लेक्टोज की मात्रा अधिक होतीहै जिसके कारण खनिज लवण को शोषण अच्छी तरह से होता है।
- माँ के दूध में किसी प्रकार की मिलावट का भय नहीं होता।
- शिशु के मुंह का व्यायाम भी हो जाता है तथा माँ और शिशु के बीच में भावनात्मक लगाव उत्पन्न होता है। दोनों एक प्रकार की सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। माँ का दूध गाय एवं भैंस के दूध की तुलना में कितना मूल्यवान है यह निम्न सारिणी–2 से स्पष्ट है।●

सारिणी–1
शिशु में पोषक तत्व की मात्रा

पोषक तत्व	मात्रा
कैलोरी	58
वसा	2.9
कैल्शियम	31
फास्फोरस	14
आयरन	0.09
प्रोटीन	2.7
लेक्टोज	5.3
कैरोटीन	186
विटामिन ए	296

सारिणी–2
माँ के दूध की गाय–भैंस के दूध से तुलना

पोषक तत्व	माँ	गाय	भैंस
जल	88	87.5	81
कैलोरी	65	67	117
प्रोटीन	1.1	3.2	43
कार्बोहाइड्रेट	7.4	4.4	5.0
वसा	3.4	4.1	65
कैल्शियम	28	120	210
फास्फोरस	11	90	130
आयरन	–	0.2	02
कैरोटीन	137	174	160
थॉयमिन	0.02	0.05	0.04
राइबोफ्लेविन	0.02	0.19	0.10
विटामिन सी	3	2	1
केसीनियोजन एवं लैक्टालबुमिल अनुपात			1:23:1–

(पृष्ठ 15 का शेष)

का आना जाना न हो।

- खाली कंटेनर को किसी पत्थर से तोड़कर उसे पानी से दूर कहीं जमीन में गहरा गड्ढा खोदकर दबा दें।
- छिड़काव के बाद सारे कपड़े गर्म पानी में साबुन से धोंयें और साबुन से नहा लेना चाहिए।
- स्पेयर और बाल्टी को इस्तेमाल करने के बाद साबुन से 4–5 बार धोऐं।
- कृषि रसायनों के गलत इस्तेमाल से कई घटनायें घटित हो जाती हैं, लिहाजा ऊपर बताई गई बातों को ध्यान में रखते हुए ही कीटनाशक का छिड़काव

किया जाये तो काफी हद तक इनके हानिकारक असर से बचा जा सकता है।●

मूँग की वैज्ञानिक ढंग से खेती तथा इसमें लगने वाले प्रमुख कीड़ों व रोगों की उचित रोकथाम

शिवेन्द्र प्रताप सिंह*, अमरनाथ सिंह**, अनुभूति सिंह***, सुधाकर सिंह****

मूँग भारत व दक्षिण पूर्व एशिया की एक खास फसल है, इसमें प्रोटीन बहुत मात्रा में पाया जाता है, इसके अलावा इसमें कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्व व विटामिन भी होते हैं और कम समय में पकने के कारण इसे बहुफसली चक्र में आसानी से रखा जा सकता है। मूँग की फसल से फलियों की तुड़ाई के बाद पौधों को खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से पलट कर मिट्टी में दबा देने से यह हरी खाद का काम करती है। मूँग की खेती करने से मिट्टी की ताकत में भी इजाफा होता है। मूँग को खरीफ, रबी व जायद तीनों मौसमों में आसानी से उगाया जा सकता है, उत्तरी भारत में इसे बारिश व गर्मी के मौसम में उगाते हैं। दक्षिण भारत में मूँग को रबी मौसम में उगाते हैं, इस फसल के लिए ज्यादा बारिश नुकसानदायक होती है, ऐसे इलाके, जहाँ पर 60 से 75 सेमी तक सालाना बारिश होती है, मूँग की खेती के लिए उपयुक्त है। मूँग की फसल के लिए गरम जलवायु की जरूरत पड़ती है। इसकी खेती समुद्र तल से 2000 मी की ऊँचाई तक की जा सकती है। पौधों पर फलियाँ लगते समय और फलियाँ पकते समय सूखा मौसम व ऊँचा तापमान बहुत ज्यादा फायदेमंद होता है।

मिट्टी

मूँग की सफलतापूर्वक खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली बलुई दोमट जमीन सबसे अच्छी मानी गई है, उत्तरी भारत में अच्छी जल निकासी वाली दोमट मटियार मिट्टी और दक्षिण भारत के लिए लाल मिट्टी ठीक होती है।

खेत की तैयारी

बारिश शुरू होने के बाद खेत में 1 बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके 2 से 3 बार कल्टीवेटर या देशी हल से जुताई करनी चाहिए और पाटा चलाकर खेत को बराबर बना लेना चाहिए। आखिरी जुताई के समय खेत में गोबर या कंपोस्ट खाद 50 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिला देना चाहिए। दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपायरीफास 15 फीसदी चूर्ण 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिलाना फायदेमंद होता है।

मूँग की प्रजातियों का चयन

रबी मौसम के लिए

टाइप 1, पंत मूँग 3, एचयूएम 16, सुनैना और जवाहर मूँग 70, नरेन्द्र मूँग 1।

खरीफ मौसम के लिए

पूसा विशाल, मालवीय ज्योति, एमएल 5, जवाहर मूँग 45, अमृत, पीडीएम 11 और टाइप 51, नरेन्द्र मूँग 1।

रबी व खरीफ दोनों मौसमों के लिए

टाइप 44, पीएस 16, पंत मूँग 1, पूसा विशाल, के 851 और शालीमार मूँग 2, नरेन्द्र मूँग 1।

बीज की मात्रा

खरीफ मौसम में 12 से 15 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर की दर से डालना फायदेमंद होगा और बुवाई कतारों में 30 से 40 सेमी की दूरी पर करनी चाहिए। रबी व गर्मी के मौसम में मूँग के लिए बीज दर 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए और बुवाई कतारों में 20 से 25 सेमी की दूरी पर करनी चाहिए।

खाद व उर्वरक

मूँग एक दाल वाली फसल है, फिर भी 20 किग्रा नाइट्रोजन, 50 किग्रा फास्फोरस व 20 किग्रा पोटाश की मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय देना फायदेमंद होगा, गंधक की कमी वाले रकबों में गंधयुक्त उर्वरक 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए और सभी चारों तरह के उर्वरकों की पूरी मात्रा बुवाई से पहले या बुवाई के समय ही देनी

*शोध छात्र, अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन, **परियोजना सहायक, प्रसार निदेशालय, ***शोध छात्र, फसल कार्यिकी, ****शोध छात्र, सस्य विज्ञान, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

चाहिए। यदि संभव हो तो हर तीसरे साल में 1 बार 10 से 15 कुन्तल अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद आखिरी जुताई के समय प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालनी चाहिए।

सिंचाई व जल निकास

खरीफ में मूँग की फसल को सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है, लेकिन फूल आने की दशा में सिंचाई करने से उपज में काफी इजाफा होता है, अधिक बारिश की दशा में खेत से पानी निकालना बेहद जरूरी होता है। गर्मी में मूँग की फसल में खरीफ की तुलना में पानी की ज्यादा जरूरत होती है, गर्मी के मौसम में 10 से 15 दिनों के अंतर पर 4 से 6 सिंचाई करनी चाहिए, ज्यादा गर्मी होने पर सिंचाई का अंतर 8 से 10 दिनों का रखना चाहिए।

निराई गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण

बुवाई के 15 से 20 दिनों बाद पहली और 40 से 45 दिनों बाद दूसरी निराई करनी चाहिए, घास व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को रसायनिक विधि द्वारा खत्म करने के लिए फ्लूक्लोरिलिन 45 ईसी की 2 लीटर मात्रा 800 से 1000 लीटर पानी में घोलकर बुवाई से पहले खेत में छिड़काव करें, बुवाई के बाद बीज जमने से पहले पेंडिमेथिलीन 30 ईसी की 3.3 लीटर मात्रा 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

बुवाई का समय व तरीका

जायद मूँग की बुवाई जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ फरवरी में ही कर देनी चाहिए। खरीफ मौसम में मूँग की बुवाई मानसून आने पर जून के दूसरे पखवाड़े के बीच करनी चाहिए। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, बिहार व पश्चिम बंगाल में मूँग की खेती गर्मी के मौसम में की जाती है, इन राज्यों में मूँग को गन्ना, गेहूँ, आलू आदि की कटाई के बाद बोते हैं। मूँग की बुवाई कतारों में करनी चाहिए। 2 कतारों के बीच की दूरी 30 से 45 सेमी रखनी चाहिए बीजों को 4 से 5 सेमी की गहराई पर बोना चाहिए। मूँग के बीजों को पहले कार्बेंडाजिम से उपचारित करने के बाद ही बोना चाहिए।

कटाई मड़ाई

फसल की कटाई मूँग की किस्म पर निर्भर करती है। एक ही समय में पकने वाली प्रजाति में जब फसल 80 फीसदी तक पक जाती है, तो उसे जड़ से उखाड़ लेते हैं या काट लेते हैं। उसके बाद धूप में सुखाकर ट्रैक्टर या लकड़ी के डंडे से गहाई कर लेते हैं। सही समय पर फसल की कटाई करने के बाद गहाई कर के

(शेष पृष्ठ 24 पर)

सारिणी–1 मूँग में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोग

कीट/रोग	रोकथाम
प्रमुख कीट	
काला लाही माहूँ	मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
हरा फुदका (जैसिड)	मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।
सफेद मक्खी	मिथाइल डेमीटीन (मेटासिस्टाक्स) 25 ईसी का 625 मिली या मैलाथियान 50 ईसी या डायमेथोएट 30 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से जरूरत के मुताबिक छिड़काव करना चाहिए।
थ्रिप्स	डायमेथोएट 30 ईसी या मैलाथियान 50 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर या मेटासिस्टाक्स 25 ईसी का 700 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
नीली तितली	मैलाथियान 50 ईसी का 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
प्रमुख रोग	
पीली चितेरी (येलो मोजैक)	मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान या डायमेथोएट या मोनोक्रोटोफास (0.04 फीसदी) का छिड़काव करना चाहिए।
झुर्रीदार पत्ती (लीफ क्रिंकल)	मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान या डायमेथोएट या मोनोक्रोटोफास (0.04 फीसदी) का छिड़काव करना चाहिए।
चूर्णी फफूँदी रोग	कार्बेंडाजिम की 1 ग्राम या सल्फेस 3 ग्राम मात्रा का प्रति लीटर पानी दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

सब्जी बीज ग्राम अवधारणाः ग्रामीण स्वावलम्बन के लिए सफलता की कुंजी

निशाकान्त मौर्य*, डॉ गुलाब चंद यादव** एवं रागिनी मौर्य***

बीज कृषि का प्रारंभिक बिंदु होता है और अन्य आदानों की अंतिम उत्पादकता को निर्धारित करता है। मात्र अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग करने से फसल उत्पादन में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। भविष्य में हमारे देश के 135 करोड़ लोगों के भोजन की आवश्यकता को पूर्ण करने की संभावित चुनौती के लिये कृषि उत्पादकता में वृद्धि बहुत आवश्यक है। अतः कृषक समुदाय के लिए सब्जियों के उन्नत किस्मों के उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का उत्पादन और उसका वितरण बहुत तेजी से महत्वपूर्ण होता जा रहा है। उष्णकटिबंधीय परिस्थितियों में कृषि के विस्तार हेतु किशोर अवधि में नश्ल सुधार के कारण विभिन्न पर्यावरणीय स्थिति में बीज उत्पादन के साथ–साथ उसके विषय में वैज्ञानिक और तकनीकी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

भारत वैश्विक स्तर पर बीजोत्पादन करने वाला पाँचवा सबसे बड़ा देश है। बीज से संबंधित कार्यक्रमों में राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य सरकार, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों की प्रणाली, 22 राज्य बीज प्रमाणन संगठन, 104 राज्य बीज परीक्षण प्रयोगशालाएँ, विभिन्न सहकारी और निजी क्षेत्र के संस्थानों की भागीदारी शामिल है। इन सभी के सर्वोत्तम प्रयासों के साथ संगठित क्षेत्रों में सार्वजनिक संगठन द्वारा गुणवत्तापूर्ण बीज की कुल आवश्यकता का महज 15–20 प्रतिशत से भी कम किया जा रहा है। जिस प्रकार से पीढ़ी दर पीढ़ी बीजों की गुणवत्ता बिगड़ती जा रही है, पुराने बीज को नये गुणवत्तायुक्त बीज से अवश्य बदलना चाहिए।

आदर्शतः सभी प्रकार की सब्जियों में संकर किस्मों के लिए बीज को प्रत्येक वर्ष और गैर संकर किस्मों के लिए हर तीन से चार वर्ष में प्रतिस्थापित अवश्य किया जाना चाहिए। बीज प्रतिस्थापन दर (एसआरआर) बढ़ाने के लिए गुणवत्तायुक्त बीज की उपलब्धता में सुधार करने की आवश्यकता है। एक संगठित बीज कार्यक्रम के कार्यान्वयन के बावजूद, मुख्य सब्जी फसलों में बीज प्रतिस्थापन दर 83.7 प्रतिशत, मिर्च 86. 4 प्रतिशत फूलगोभी, 99.3 प्रतिशत, टमाटर 99.3 प्रतिशत तक है, परन्तु सब्जी बीजों के उत्पादन और वितरण में विभिन्न निजी बीज उद्योगों की भूमिका भारतीय बीज उद्योग में सबसे ज्यादा है। (एनोनिमस, 2018)। हालाँकि, वे आम तौर पर कम मात्रा के अधिक मूल्य वाले बीज के उत्पादन में बने रहते हैं, जो केवल कुछ चयनित किसानों की जरूरतों को पूरा करते हैं।

देश भर में व्यवसायिक खेती के लिए विभिन्न प्रकार की सब्जी फसलों के बीजों का वितरण सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के द्वारा बहुत कम मात्रा में किया जा रहा है जिसका फायदा निजी संगठनों द्वारा लिया जा रहा है जो अपनी कमाई का 10–12 प्रतिशत शोध कार्यों में खर्च करते हैं। सभी प्रकार की सब्जी फसलों के उत्पादन और उत्पादकता में तत्काल वृद्धि करने के लिए सस्ती, नई और उच्च उपज देने वाली किस्मों के गुणवत्ता वाले बीजों के ज्यादा से ज्यादा सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के द्वारा वितरण कर प्राप्त किया जा सकता है।

सब्जी बीज उद्योग में संभावनाएँ

वर्तमान परिवेश में विभिन्न प्रकार के सब्जी फसलों में गुणवत्ता वाले बीजों का उत्पादन और वितरण करने का बहुत बड़ा अवसर है, जिसके लिए बीज ग्राम अवधारणा एक अनूठा और अत्यधिक व्यवहारिक दृष्टिकोण है और इसे कृषक संगठनों के बीच अधिक से अधिक बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इसके अलावा ग्रामीण स्तर पर वाँछित किस्मों के गुणवत्तापूर्ण बीजों के उत्पादन और समय पर वितरण की सुविधा प्रदान करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ

*शोध छात्र, सब्जी विज्ञान, **सह प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र. ***शोध छात्रा, उद्यान विज्ञान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

में, बीज ग्राम अवधारणा गुणवत्तायुक्त बीज के उत्पादन और वितरण में गाँव की आत्मनिर्भरता की वकालत करती है।

बीज ग्राम अवधारणा क्या है

एक गाँव, जिसमें विभिन्न प्रकार के किसानों के प्रशिक्षित समूह विभिन्न सब्जी फसलों के बीजों के उत्पादन में शामिल होते हैं और अपनी जरूरतों के साथ–साथ पड़ोसी गाँवों की आवश्यकताओं को उचित समय और उचित मूल्य पर पूरा करते हैं, बीज ग्राम अवधारणा कहलाता है।

परिकल्पना का उद्देश्य

- समूह में बीज उत्पादन का आयोजन।
- मौजूदा स्थानीय किस्मों की जगह नई एवं उच्च उपज देने वाली किस्मों के साथ प्रतिस्थापन।
- सब्जी बीज उत्पादन में वृद्धि।
- स्थानीय माँग को पूरा करने के लिए उचित मूल्य एवं समय पर आपूर्ति।
- गाँव की आत्मनिर्भरता और विश्वसनीयता।
- बीज प्रतिस्थापन दर में वृद्धि।

बीज ग्राम अवधारणा की विशेषताएँ

- किसानों को बीज उचित समय पर उपलब्ध हो पाता है।
- बाजार मूल्य से भी सस्ती कीमत पर बीज उपलब्धता हो पाती है।
- उत्पादन के ज्ञात स्रोत के कारण गुणवत्ता के बारे में किसानों में विश्वास बढ़ा है।
- उत्पादक और उपभोक्ता परस्पर लाभान्वित होते हैं।
- विभिन्न प्रकार के सब्जियों में नए किस्मों का तेजी से प्रसार की सुविधा प्रदान करता है।

बीज गाँवों की स्थापना

वर्तमान में बीज ग्राम योजना कार्यक्रम के दो चरण हैं:

(1) विभिन्न सब्जी फसलों का बीज उत्पादन

बीज गाँव की अवधारणा आधारीय और प्रमाणित वर्गों के गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन को बढ़ावा देना है। वह क्षेत्र जो किसी विशेष फसल को उगाने के लिए उपयुक्त है, उसको चयनित करके एक तरह की किस्म के साथ उगाया जाता है।

क्षेत्र का चयन

निम्नलिखित सुविधाओं वाले क्षेत्र का चयन किया जाना चाहिए–

- सिंचाई की उचित सुविधा हो।
- एक से अधिक मौसम में फसल उगाने के लिए जलवायु परिस्थितियों की अनुकूलता है।
- मजदूरों की उपलब्धता और स्थानीय किसानों का उस विशेष फसल के बारे में ज्ञान हो।
- कीट और रोगों का क्षेत्र विशेष में कम प्रभाव हो।
- बीज की फसल उगाने के उपयुक्ता हेतु क्षेत्र का पिछला इतिहास ज्ञात हो।
- औसत वर्षा और वितरण का आँकड़ा उपलब्ध हो।
- बीज और अन्य आदानों की आसान गतिविधि हेतु एक शहरी क्षेत्र के लिए निकटता हो।

बीजोत्पादन हेतु बीज की आपूर्ति

वैज्ञानिकों द्वारा बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त क्षेत्र की पहचान किया जाना। आधारीय/प्रमाणित बीज या विश्वविद्यालयों के बीज विश्वविद्यालय द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र (केवीके) और अनुसंधान केन्द्र के माध्यम से क्षेत्र में पहचान किए गए किसानों को न्यूनतम लागत पर आपूर्ति की जाती है। किसान भाई इन गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग करके अपने स्वयं के उपयोग के लिए एक छोटे से क्षेत्र में बीज का उत्पादन कर सकते हैं।

क्षमता निर्माण कार्यक्रम

प्रौद्योगिकी और समुदाय की भागीदारी के बीच तालमेल का उपयोग करने, गुणवत्ता वाले सब्जी

बीजों का उत्पादन करने तथा किसान की क्षमता का निर्माण करने के लिए विशेष जोर दिया जा रहा है। बीज गाँवों में उगाई जाने वाली बीज फसलों के लिए पहचान किए गए किसानों को सब्जी बीज से संबंधित वरिष्ठ वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर शिविर के माध्यम से बीज उत्पादन और बीज प्रौद्योगिकी पर प्रशिक्षण के साथ–साथ निःशुल्क बीज वितरित किया जाता है।

(2) बीज प्रसंस्करण इकाई की स्थापना

परिपक्व फसल कटाई के बाद बीजों को संभालना, उन्नत किस्मों के अच्छे गुणवत्ता वाले बीज की उपलब्धता एवं समय से विपणन बीज प्रसंस्करण का एक महत्वपूर्ण घटक है। यदि बीज ठीक से प्रसंस्कृत और संभाला नहीं गया तो उत्पादन के सभी प्रयास विफल हो सकते हैं। इस प्रकार सब्जी उत्पादन में बीज प्रसंस्करण और डिब्बाबंदी बहुत महत्वपूर्ण पहलू है। बीज प्रसंस्करण केन्द्र का स्थान, उपलब्ध आधारित संरचना एवं बुनियादी सुविधाओं पर आधारित है जो सड़कों और परिवहन सुविधाओं से अच्छी तरह से जुड़ी होनी चाहिए।

सूचना केन्द्र

देश एवं प्रदेश के विभिन्न कृषक संगठन बीज की माँग और बाजारों के रूझान, कृषि बाजार सूचकांक, मौसम पूर्वानुमान, सरकार की नवीन योजनाओं, वित्तर प्रबंधन एवं संयंत्र के सुरक्षा उपाय आदि के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए कम्प्यूटर, स्मार्टफोन तथा इंटरनेट का उपयोग कर रहे हैं जिससे किसी भी कार्य में आने वाली समस्याओं का निवारण पहले ही हो जाता है।

बीज ग्राम अवधारणा के लाभ

- बीज के लिए सब्जी फसलों में अलगाव दूरी की समस्या को हल कर सकते हैं। मुख्य रूप से पारंपरागित फसलों जैसे कि गोभी एवं लता वर्गीय सब्जियाँ, गाजर, प्याज, पालक आदि में किस्मों के बीच अधिक अलगाव दूरी की आवश्यकता होती है। अतः इस समस्या को एक बड़े क्षेत्र में एकल किस्म को उगाकर हल किया जा सकता है।
- बुवाई से कटाई तक विभिन्न प्रकार के मशीनों का उपयोग संभव हो पायेगा।
- परिपक्व सब्जी फसलों की कटाई के बाद संभालना आसान है।
- एक ही किस्म होने के कारण, प्रसंस्करण एवं सूखने के दौरान किस्मों में मिश्रण की समस्या से बचा जा सकेगा।
- बीज प्रमाणीकरण अधिकारी कम समय में बड़े क्षेत्र को देख सकेगा।
- यह खेती की लागत को कई तरीकों से कम करता है।
- बीज सदैव उच्च अनुवांशिक एवं भौतिक शुद्धता से परिपूर्ण रहता है।●

(पृष्ठ 21 का शेष)

भंडारण करें। मूँग की फलियाँ गुच्छों में लगती हैं। पूरी फसल में फलियों को 2 से 3 बार में तोड़ लिया जाता है। आमतौर पर खरीफ की फसल में कुछ फलियाँ अंत तक बनी रहती हैं, ऐसी दशा में पकी फलियों को तोड़ना सही होता है और करीब 80 फीसदी फलियाँ पकने पर फसल की कटाई कर सकते हैं। पकी फसल पर बारिश होने की स्थिति में फलियों के अंदर दाने अंकुरित होने लगते हैं, अतः मौसम को ध्यान में रखते हुए फसल की कटाई व फलियों की तुड़ाई करना सही होता है।

उपज

मूँग की औसत उपज 8 से 10 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है। नए तरीके से खेती करने पर इसकी पैदावार 15 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक ली जा सकती है।●

गेहूँ की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोगों की पहचान और फसल प्रबंधन

डॉ. प्रदीप कुमार*, डॉ. एल सी वर्मा**, डॉ. एस एन सिंह*** एवं डॉ. डी पी सिंह****

गेहूँ की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोगों के प्रकोप की वजह से बढ़वार कम होने के साथ ही कल्ले भी कम निकलते हैं, इसलिए सही वक्त पर इनकी पहचान कर समुचित प्रबंधन करना बेहद जरूरी होता है, जिससे उपज पर कोई प्रभाव न पड़े। गेहूँ की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट व रोगों की पहचान और फसल प्रबंधन निम्न प्रकार है।

कीट

दीमक

दीमक सफेद मटमैले रंग का बहुभक्षी कीट जो कालोनी बनाकर रहते हैं। बलुई, दोमट मृदा, सूखे की स्थिति में दीमक के प्रकोप की संभावना ज्यादा रहती है। ये कीट जम रहे बीजों को व जड़ों को खाकर नुकसान पहुँचाते हैं, ये पौधों को रात में जमीन की सतह से भी काटकर हानि पहुँचाती हैं। प्रभावित पौधे अनियमित आकार में कुतरे हुए दिखाई देते हैं।

रोकथाम

खेत में कच्चे गोबर का प्रयोग नहीं करना चाहिए। फसलों के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। नीम की खली 10 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व खेत में मिलाने से दीमक के प्रकोप में कमी आती है। भूमि शोधन हेतु विवेरिया वैसियाना 2.5 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 50–60 किग्रा अधसड़े गोबर में मिलाकर 8–10 दिन रखने के उपरान्त प्रभावित खेत में प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में प्रकोप होने पर सिंचाई के पानी के साथ क्लोरपाइरीफास 20 प्रतिशत ईसी 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

माहू

यह पँखहीन अथवा पँखयुक्त हरे रंग के चुभाने एवं चूसने वाले मुखाँग वाले कीट होते हैं कीट के शिशु तथा प्रौढ़ पत्तियों व बालियों से रस चूसते हैं तथा मधुस्राव भी करते हैं जिससे काले कवक का प्रकोप हो जाता है तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है।

रोकथाम

गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए। बीजों की समय से बुवाई करें। खेत की निगरानी करते रहना चाहिए। गंधपास (फेरोमेन ट्रैप) प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

सैनिक कीट

नवजात सूंड़ियाँ पौधों के साथ बारीक धागे की सहायता से लटकी रहती हैं और इसी धागे की मदद से एक पौधे से दूसरे पौधे तक जाती हैं। शुरू में ये सूंड़ियाँ कोमल पत्तियों पर पलती हैं और बड़ी सूंड़ियाँ पुरानी पत्तियों को खाकर उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर देती हैं। फसल में सूंड़ियाँ उनकी वीठ से पहचानी जा सकती हैं। कभी–कभी सूंड़ियाँ बालियों एवं दानों को भी खा जाती हैं।

रोकथाम

सूंड़ियों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें, कीटनाशक जैस डाईक्लोरोवास 76 ईसी 2 मिली या कार्बारिल 50 डब्ल्यू पी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर सकते हैं।

टिड्डे (ग्रासहॉपर)

इस कीट के प्रौढ़ और शिशु अंकुरित फसल को खाकर बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। मैदानी व निचले पूर्वी क्षेत्रों में कई बार गेहूँ की फसल में इससे काफी नुकसान देखा गया है। यह गेहूँ के प्रमुख कीटों में से एक हैं।

रोकथाम

कीट प्रकोप होने पर 2 मिली क्लोरोपाइरीफास 20

*विषय वस्तु विशेषज्ञ, फसल सुरक्षा, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, विषय वस्तु विशेषज्ञ कृषि प्रसार, विषय वस्तु विशेषज्ञ, पशुपालन, कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहना, सिद्धार्थनगर

ईसी प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव भी कर सकते हैं। खेतों की मेढ़ों पर उग रही घास पर भी इन कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है।

रोग

गेरुआ (रतुआ) रोग

तना गेरुआ रोगकारक

(पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटिसाई)

लक्षण

यह रोग पत्तियों एवं तने पर गहरे भूरे रंग के लंबे धब्बे के रूप में आता है, जिनमें बीजाणुधानी पुंजों की बाह्म त्वचा पर चाँदी के रंग के धब्बे होते हैं। पौधे की बाली पर भी धब्बे उत्पन्न हो सकते हैं।

पर्ण गेरुआ रोगकारक

(पक्सीनिया ट्रिटिसाई)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों की शिराओं के साथ–साथ चलने वाले धब्बों की पीले रंग की धारियों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। पौधे के तने, पर्णच्छंद एवं बाली पर भी ऐसे धब्बे दिखाई पड़ते हैं।

प्रबंधन

विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में रोगरोधी किस्मों का प्रयोग। तना गेरुआ और पर्ण गेरुआ की रोग प्रतिरोधी किस्में उगाएँ, जैसे कि एचआई 1500, एचडी 2967, एचआई 1530, एचआई 1531, एचआई 8948, एचडी 2733, एचडी 2781, एचडी 4672, एचडब्ल्यू 1085, एचडब्ल्यू 2004, डीएल 15302 इत्यादि। प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ईसी) 1 एमएल प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

पर्ण झुलसा

रोगकारक

यह एक जटिल रोग है जो बाइपोलेरिस सोरोकिनियाना, पायरेनाफोरा ट्रिटिसाई रीपेंटिस एवं अल्टरनेरिया ट्रिटिसाइना द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण

पत्तियों पर बहुत छोटे और गहरे भूरे रंग के पीले प्रभामंडल से घिरे धब्बे बनते हैं, जो बाद में परस्पर मिल कर पर्ण झुलसा रोग उत्पन्न करते हैं। संक्रमित पत्तियाँ जल्दी सूख जाती है और पूरा खेत दूर से झुलसा हुआ दिखाई पड़ता है तथा संक्रमित बाली में भूरे धब्बे वाले दाने दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रो में एचडी 2985, एचआई 1563, डीबीडब्ल्यू 39, सीबीडब्ल्यू 38, एनडब्ल्यू 1014, एनडब्ल्यू 2036, के 9107, एचडी 2733, डीबीडब्ल्यू 14, एचडी 2888, के 0307, एचयूडब्ल्यू 468 इत्यादि किस्में उगाएँ। 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू पी) के साथ बीजोपचार करें। 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ईसी) का छिड़काव करें। खेत में पानी का जमाव न रहने दें।

करनाल बंट

रोगकारक

(टिलिषिया इंडिका)

लक्षण

थ्रेसिंग के बाद निकले दानों में बीज की दरार के साथ–साथ गहरे भूरे रंग के बीजाणु समूह देखे जा सकते हैं। संक्रमण अधिक गंभीर होने पर पूरा दाना खोखला हो जाता है और केवल बाहरी परत शेष रह जाती है।

प्रबंधन

रोग सहिष्णु किस्मों का प्रयोग जैस पीबीडब्ल्यू 502, डब्ल्यू एच 896, पीडी डब्ल्यू 233 इत्यादि। खेत में अधिक नमी न होने दें और स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई करें। बूट लीफ अवस्था में 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ईसी) का पत्तियों पर छिड़काव। 3 ग्राम

प्रति किग्रा बीज की दर से थीरम से बीजोपचार करें। फसल की प्लास्टिक मल्चिंग की जा सकती है।

शलथ कंड

रोगकारक

(ऑस्टिलेगो सेजेटम उपजाति ट्रिटिसाई)

लक्षण

रोग के लक्षण बाली निकलने के बाद ही दिखाई पड़ते हैं। संक्रमित बालियों में दानों के स्थान पर बीजाणुओं का गहरे काले रंग का पाउडर भरा होता है।

प्रबंधन

2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू) या कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिम 50 डब्ल्यूपी) से अथवा 1.25 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से टेब्यूकोनाजोल 2 डीएस (रैक्सिल) के साथ बीजोपचार करें।

ध्वज कंड

रोगकारक

(सूरोसिस्टम एग्रोपायराई)

लक्षण

रोग के लक्षण पत्तियों पर चाँदी के रंग के लंबे बीजाणुधानी पुंजों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, जो कवक के गहरे भूरे रंग के बीजाणुओं से भरे होते हैं। संक्रमित पौधे बौने रह जाते हैं, उन पर बालियाँ विकसित नहीं होती और वे समय से पहले ही मर जाती है।

प्रबंधन

2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू) या कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन 50 डब्ल्यूपी) से अथवा 1.25 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से टेब्यूकोनाजोल 2 डीएस (रैक्सिल) के साथ बीजोपचार करें। पहले साल जिन सुग्राही किस्मों में यह ध्वज कंड देखा गया हो, उनकी बुवाई न करें।

चूर्ण फफूँद

रोगकारक

(इरीसायफी ग्रमिनिस ट्रिटिसाई)

लक्षण

यह रोग पौधे की पत्तियों, तने, आच्छद एवं बालियों पर स्लेटीपन लिए सफेद चूर्ण (पाउडर) के रूप में दिखाई पड़ता है। ऐसे सफेद पाउडर के धब्बे सम्पूर्ण पत्ती को ढक सकते हैं और तापमान बढ़ने पर उनमें पिन की ऊपरी घुंडी की आकृति के गहरे रंग के क्लाइस्टोथीसिया बन जाते हैं।

प्रबंधन

रोग के संक्रमण से दाने बनने की अवस्था तक 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ईसी) का पत्तियों पर छिड़काव करें। छायादार खेत में गेहूँ की बुवाई न करें।●

सारिणी–1
गेहूँ की फसल के रोग एवं अनुकूल मौसम का विवरण

रोग	रोग के लिए अनुकूल मौसम
तना गेरूआ	उच्च तापमान (20–35 डिग्री सेल्सियस) एवं उच्च आर्दता (>90 प्रतिशत)
पर्ण गेरूआ	मध्यम तापमान (20–35 डिग्री सेल्सियस) एवं उच्च आर्दता (>90 प्रतिशत)
धारीदार गेरूआ	कम तापमान (5–20 डिग्री सेल्सियस) एवं उच्च आर्दता (>90 प्रतिशत)
पर्ण झुलसा	उच्च तापमान (25–30 डिग्री सेल्सियस) एवं उच्च आर्दता (>90 प्रतिशत)
करनाल बंट	कम तापमान (10–20 डिग्री सेल्सियस) के साथ पुष्पन अवस्था में वर्षा तथा 80 प्रतिशत से अधिक आपेक्षित आर्दता
शलथ कंड (खुला कंडुवा)	कम तापमान (15–20 डिग्री सेल्सियस) एवं उच्च आर्दता (>90 प्रतिशत)
ध्वज कंड	20 डिग्री सेल्सियस के आस–पास मृदा तापमान तथा शुष्क एवं बलुई मृदा
चूर्णी फफूँद	20 डिग्री सेल्सियस के आस–पास मृदा तापमान तथा शुष्क एवं बलुई मृदा वाली उत्तरी पहाड़ियों / निचली पहाड़ियों हमें होता है। 15–20 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं मध्यम स्तर की आपेक्षिक आर्दता रोग के लिए अनुकूल है।

पशु मदहीनता में खनिज लवणों एवं संतुलित आहार का महत्व

डॉ. एस एन लाल*, डॉ. सतीश कुमार सिंह**, एवं डॉ. अनिल कुमार***

पशु के आहार में खनिज लवणों का अतिमहत्वपूर्ण स्थान है। शरीर में इनकी कमी से नाना प्रकार के रोग एवं समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इनकी कमी से पशुओं का प्रजनन तंत्र भी प्रभावित होता है, जिससे पशुओं में प्रजनन संबंधित विकार पैदा हो जाते हैं, जैसे पशु का बार–बार मद में आना, अधिक आयु हो जाने के बाद भी मद में नहीं आना, व्याने के बाद मद में नहीं आना या देर से आना तथा मद में आने के बाद भी बच्चे का नहीं रूकना इत्यादि विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

खनिज लवणों के विस्तृत जानकारी से पहले यह बताना आवश्यक है कि खनिज क्या है। किसी भी वस्तु के जलने पर जो राख बचती है, उसे भस्म या खनिज कहते हैं। यह बहुत ही थोड़ी मात्रा में प्रत्येक प्रकार के चारे–दाने तथा शरीर के प्रायः सभी अंगों में पाये जाते हैं। प्रकृति में लगभग 40 प्रकार के खनिज जीव–जन्तुओं के शरीर में पाये जाते हैं, लेकिन इसमें से कुछ का ही अत्यन्त उपयोग हैं, जिनकी आवश्यकता पशु के आहार में होती है। शरीर के आवश्यकतानुसार खनिजों को दो भागों में बाँटते हैं। एक तो वे खनिज जो अधिक मात्रा में पशु के लिये आवश्यक है, जिनकी मात्रा को ग्राम में या प्रतिशत में व्यक्त करते हैं इनको प्रमुख खनिज कहते हैं, जैसे– कैल्शियम, फास्फोरस, पोटैशियम, सोडियम, सल्फर, मैग्नीशियम तथा क्लोरीन। दूसरे वे खनिज जो शरीर हेतु बहुत सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होते हैं, जिसको पीपीएम में व्यक्त करते हैं, ऐसे खनिजों को सूक्ष्म या विरल खनिज कहते हैं, जैसे लोहा, जिंक, कोबाल्ट, कॉपर, आयोडीन, मैगनीज, मोलीब्डेनम, क्रोमियम, फ्लोरिन, सेलेनियम, निकल, सिलिकान, टिन एवं वेनाडियम। यद्यपि दूसरे सूक्ष्म खनिज जैसे एल्यूमिनियम, आर्सेनिक, बेरियम, बोरान, ब्रोमिन, कैडमियम एवं स्ट्राटियम भी शरीर के ऊतकों में पाये गये हैं, परन्तु शरीर में इसकी भूमिका के बारे में अभी तक जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी है।

इस प्रकार कैल्शियम, फास्फोरस, पोटैशियम, सोडियम, सल्फर, मैग्नीशियम, क्लोरिन, लोहा, ताँबा, कोबाल्ट, मैगनीज, जिंक एवं आयोडीन आदि पशुओं के लिए अति आवश्यक खनिज लवण हैं, जो जीवन एवं स्वास्थ्य रक्षा हेतु आवश्यक है। शरीर में खनिज लवणों के सामान्य कार्य की बात की जाय तो कैल्शियम एवं फास्फोरस दाँत हड्डियों के बनने में आवश्यक है। दुधारू गायों के रक्त में कैल्शियम की कमी से दुग्ध ज्वर हो जाता है। सोडियम, पोटैशियम एवं क्लोरीन शरीर के द्रवों में पारस्परिक दाब को ठीक बनाये रखते हैं तथा उनमें अन्य गुणों का सन्तुलन स्थापित करते हैं। रक्त में पोटैशियम, कैल्शियम तथा सोडियम का समुचित अनपात हृदय की गति तथा अन्य चिकनी माँसपेशियों को उत्तेजित करने एवं उनमें संकुचन की क्रिया सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है। लौह लवण लाल रक्त कणों में हीमोग्लोबिन बनाने में आवश्यक होता है, जिसके कारण रक्त में ऑक्सीजन लेने की शक्ति पैदा होती है। अन्य खनिज लवण या तो शरीर के कुछ आवश्यक भाग बनाते हैं या एंजाइम पद्धति के आवश्यक तत्व बनाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके कुछ विशेष कार्य भी होते हैं।

पशुओं के प्रजनन क्षमता को प्रभावित करने वाले खनिज लवणों की बात की जाए तो ये मुख्यतः कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा, ताँबा, कोबाल्ट, मैग्नीज, आयोडीन एवं जिंक है। इन जैविक तत्वों की कमी से पशुओं में मदहीनता अथवा बार–बार मद में आना एवं गर्भ धारण न करने की समस्याएँ आती हैं। आहार में कैल्शियम की कमी के कारण अंडाणु का निशेचन कठिन होता है तथा गर्भाशय पीला तथा अक्रियाशील हो जाता है। पशुओं के आहार में फास्फोरस के कमी से

*विषय वस्तु विशेषज्ञ, केवीके, बस्ती, *विषय वस्तु विशेषज्ञ, पशु विज्ञान, केवीके, गोरखपुर, *विषय वस्तु विशेषज्ञ, पशु विज्ञान, प्रसार निदेशालय आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

पशुओं में अण्डोत्सर्ग कम होता है तथा पशु का गर्भपात हो जाता है। अन्य सूक्ष्म खनिज लवण भी पशुओं में अण्डोत्पादन, शुक्राणुत्पादन, निशेचन, भ्रूण के विकास एवं बच्चा पैदा होने तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मुर्गियों में अण्डा उत्पादन हेतु कैल्शियम सहित अन्य खनिज लवण अति आवश्यक है। इनके आहार में कैल्शियम के कमी से अच्छी गुणवत्ता वाले अण्डे का उत्पादन प्रभावित होता है।

अतः पशुपालक भाइयों को चाहिए कि इस तरह समस्याओं को दूर रखने के लिए पशुओं को संतुलित आहार दें, अर्थात पशुओं के दाने चारे में शर्करा या कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण तथा विटामिनों का संतुलित मात्रा में होना नितान्त आवश्यकहै। इन पोषक तत्व के असंतुलित होने के कारण ही कुपोषण जन्य रोग पैदा होते हैं। पशु के आहार में सूखा चारा तथा हरा चारा अवश्य होना चाहिए। केवल हरा चारा या केवल सूखा चारा नहीं देना चाहिए, कम से कम दो–तिहाई सूखा चारा तथा एक तिहाई हरा चारा होना चाहिए। जहाँ तक दाना की बात है तो कोई एक प्रकार का दाना या खली नहीं देना चाहिए बल्कि इनका मिश्रण होना चाहिए। यदि एक कुन्तल दाना तैयार करना है तो 20–30 किग्रा खली, 30–40 किग्रा चोकर, 15–25 किग्रा दलहनी फसलों के उपजात 15–25 किग्रा अदलहनी फसलों के उत्पाद, 2 किग्रा खड़िया एवं 1 किग्रा नमक लेकर भली–भाँति मिश्रित कर लेना चाहिए। प्रौढ़ पशुओं को निर्वाह हेतु ऐसे मिश्रित दाने की एक किग्रा मात्रा एवं अन्य कार्यों जैसे प्रजनन एवं गर्भ हेतु 1–1.50 किग्रा एवं दूध उत्पादन हेतु ढाई से तीन किग्रा दूध पर 1 किग्रा दाना निर्वाहक आहार के अतिरिक्त देना चाहिए। इस प्रकार से दिये गये आहार से पशुओं में खनिज लवणों की पूर्ति अधिकांशतः हो जाती है, परन्तु फिर भी इनमें से कुछ सूक्ष्म खनिज लवणों की कमी हो सकती है जिसके लिए खनिज मिश्रण का पाउडर जो बाजार में विभिन्न व्यापारिक नामों में उपलब्ध है, जिसको 30–40 ग्राम प्रतिदिन प्रति प्रौढ़ पशु को देना चाहिए। पशुओं के आहार में खिलाये जाने वाले विभिन्न चारों–दानों जैसे हड्डियों एवं माँस के चूर्ण में 15 से 64 प्रतिशत दो दालिय सुखी घासों में 7 से 11 प्रतिशत, खली एवं भूसी में 5–7 प्रतिशत, भूसा में 4–5 प्रतिशत, अनाज में 1.5–3.0 प्रतिशत एवं हरे चारे तथा साइलेज में 1 से 3 प्रतिशत खनिज लवण पाये जाते हैं।

इस प्रकार पशु को बताये गये चारे–दाने के प्रकार, अनुपात एवं मात्रा के अनुसार देने से प्रजनन तंत्र संबंधित विकार एवं अन्य कुपोषण जन्य समस्याओं से छुटकारा मिलता है।●

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये : खेती में आगे बढ़िये

- फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, मत्स्य तथा पशुपालन विषय की वैज्ञानिक जानकारी देने वाली लोकप्रिय मासिक पत्रिका पूर्वाञ्चल खेती। चाहे प्रगतिशील किसान हों, बागवान हों या मत्स्य/पशुपालक, अनुसंधान/प्रसार कार्यकर्ता अथवा कृषि संकाय के छात्र तथा साथ ही साथ सभी के लिये उपयोगी आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, की हिन्दी मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती।

- पूर्वाञ्चल खेती की सदस्यता शुल्क रू0 270.00 मात्र (किसानों, छात्रों एवं लेखकों के लिए रू0 220.00 मात्र) है। जो निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या को मनीआर्डर/नकद भुगतान द्वारा प्रेषित किया जाना चाहिए। सदस्यता शुल्क भेजते समय अपना नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में लिखना न भूलें। आपका सुझाव उत्तरोत्तर सुधार हेतु प्रार्थनीय है।

मार्च माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में
डॉ. सौरभ वर्मा
सह प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

(1) गन्ना की कटाई के बाद खेत को पलेवा करके मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करके 3–4 बार कल्टीवेटर या देशी हल से जुताई करें। जायद फसलों की बुवाई से पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि बीज के अंकुरण के लिये खेत में पर्याप्त नमी उपलब्ध है अथवा नहीं।

(2) ग्रीष्मकालीन मक्का की बुवाई मार्च के प्रथम सप्ताह तक करें। हरे चारे के लिये मक्का और लोबिया की बुवाई माह के प्रथम पखवारे के अन्त तक कर लें।

(3) मूँग के अच्छे प्रमाणित बीज जैसे पूसा वैशाखी, नरेन्द्र मूँग 1, टा 44 एवं पंत 1,2, को 20–25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से मार्च के दूसरे पखवारे में बोयें।

(4) उर्द टा 9 अथवा पंत यू 19 की बुवाई इसी माह के प्रथम पक्ष में करें। इसमें कतार से कतार की दूरी 20–25 सेमी रखें।

(5) सरसों की जिस फसल की पकने के बाद अभी तक कटाई न की गई हो अवश्य कर लें।

सब्जी एवं उद्यान में
डॉ. एस. के. वर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

(1) ग्रीष्मकालीन बैंगन की पौध इस माह में डालें, इसके लिए पंत ऋतुराज एवं पूसा क्रान्ति अच्छी किस्में हैं।

(2) भिण्डी बोने के लिये 18–20 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त है। इसके लिए पूसा सावनी उपयुक्त प्रजाति है।

(3) यदि फरवरी माह में लोबिया की बुवाई नहीं कर पाये हों तो इस माह अवश्य कर लें।

(4) परवल की बेल के नीचे खेत में धान के पुआल की 3–4 इंच मोटी परत बिछायें इससे खरपतवार की रोकथाम हो जाती है। यदि खेत में ज्यादा खरपतवार हो तो उन्हें निकालकर खेत को साफ कर देना चाहिए। ऐसा न करने से उपज पर कुप्रभाव पड़ता है। खाद का प्रयोग प्रथम पखवारा में ही करें।

(5) जहाँ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, आम, अमरूद, नींबू प्रजाति, कटहल, बेल, बेर, आँवला आदि के नये बाग लगाने का कार्य पूरा कर लें।

(6) नये एवं पुराने बागों में खाद एवं उर्वरक की दूसरी मात्रा का प्रयोग यदि फरवरी में न किया गया हो तो उसे पूरा कर लें।

(7) आम के गिराव को रोकने के लिए फलों के मटर की अवस्था पर नेप्थलीन एसिटिक अथवा प्लेनोफिक्स की (20 पीपीएम) 2 मिली / 4.5 लीटर पानी का छिड़काव करें।

(8) नींबू प्रजाति के पेड़ों पर यदि सूक्ष्म तत्वों के घोल का छिड़काव न किया गया हो छिड़काव कर दें।

(9) आम के फलों को ब्लैकटिप (कोइलिया रोग) से बचाने के लिये वॉसिंगसोडा 0.5 प्रतिशत (5 ग्राम प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर मटर के आकार की अवस्था पर छिड़काव करें।

(10) अमरूद, नींबू प्रजाति के बीज की बुवाई तैयार क्यारियों अथवा पॉलीथीन की थैलियों में ही करें।

फसल सुरक्षा
डॉ. वी. पी. चौधरी
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) चना की फसल एवं मटर में फली छेदक कीट का प्रकोप होने पर क्यूनालफास 25 ईसी 1.25 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

(2) उर्द, मूँग को बोने से पहले उसके बीज को 2 ग्राम थीरम या 2 ग्राम केप्टान प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें।

(3) अरहर में फली छेदक कीट की रोकथाम के लिए इन्डोक्साकार्ब 14.5 एससी 300 मिली / ली को पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(4) बसंतकालीन गन्ना बोने से पहले 625 ग्राम एगलाल 125 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से गन्ने के कटे हुए टुकड़ों को डुबोकर उपचारित कर लें। यदि दीमक का प्रकोप

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार, सह प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

होता है तो बीएचसी गामा 20 ईसी (2 मिली/ली) पानी से भी उपचारित करें।

(5) अरूई, बण्डा बोने से पहले बीज को 2 ग्राम एगलाल प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर उपचारित करें।

(6) आम की बाग में खर्रा/दहिया रोग की रोकथाम के लिए डाइनोकेप 48 ईसी आधा मिली प्रति लीटर पानी में डालकर फूल खिलने के पहले छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव सरसों के दाने के आकार के बन जाने पर करें। यदि भुनगा कीट का प्रकोप हो तो डाइक्लोरोवास एक मिली/ली पानी में घोलकर छिड़काव करें। डाइनोकेप के साथ कीटनाशी मिला सकते हैं।

पशुपालन
डॉ. अनिल कुमार
सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

(1) दुधारू पशुओं के आहार में कम से कम 30–40 ग्राम साधारण नमक तथा खनिज लवण अवश्य मिलाया जाय तथा साथ ही साथ पीने के लिये साफ व ताजा पानी दिया जाये।

(2) जो किसान भाई अभी तक हरे चारे की बुवाई न कर पाये हों तो वे इस माह के अन्त तक एमपी चरी, लोबिया तथा बाजरा की बुवाई कर लें।

(3) भेड़, बकरी तथा सूकरियों को अलग से बना हुआ संतुलित आहार खिलायें।

(4) अण्डा देने वाली मुर्गियों में से अनुत्पादक मुर्गियों की छटनी कर दिया जाये तथा अधिक अण्डा व माँस उत्पादन बनाये रखने के लिये समय–समय पर बाड़े की सफाई तथा बिछावन की गुड़ाई किया जाये।

(5) 6–8 सप्ताह के चूजों को चेचक तथा रानीखेत की बीमारी से बचाव हेतु टीकाकरण करा दिया जाये।

(6) यदि फरवरी माह में पेट के कीड़े मारने की दवा न दिये हों तो इस माह में अवश्य दें।●

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्नः बैंगन के फल में कीड़ा लग जाता है कैसे बचायें?

(श्री अंजनी वर्मा, ग्राम भीखी का पुरवा, जनपद अयोध्या)

उत्तरः यह फली छेदक कीट है इसकी रोकथाम हेतु स्पाइनोसेड 200 मिली लीटर दवा को 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। छिड़काव से पहले खाने योग्य फल को तोड़ लें तथा छिड़काव के 10–12 दिन बाद ही फल का उपयोग करें।

प्रश्नः चना में फली छेदक कीट का प्रकोप हो जाता है कैसे बचायें?

(श्री राम अभिलाख, ग्राम इब्राहिमपुर दिवली, जनपद अयोध्या)

उत्तरः चने में फली छेदक कीट के नियंत्रण के लिये इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 प्रतिशत की दवा 220 मिली दवा को 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से फली छेदक की समस्या समाप्त हो जाती है।

प्रश्नः चार वर्षीय नींबू के पेड़ में फल नहीं लगता क्या करें?

(श्री बब्लू पाण्डेय, ग्राम पाण्डेय का पुरवा, जनपद अयोध्या)

उत्तरः कागजी नींबू में फलत 5–6 वर्ष की अवस्था में आता है। खाद पानी की उचित व्यवस्था करें तथा फूल की अवस्था में पानी न लगायें। जल्दी फलत लेने के लिये पंत लेमन–1 किस्म लगायें जिससे तीन वर्ष में फलत मिलने लगेगी।

प्रश्नः दुधारू पशुओं में किलनी की समस्या है कैसे दूर करें?

(श्री हरिलाल, ग्राम रामपुरसर्धा, जनपद अयोध्या)

उत्तरः दुधारू पशुओं के साथ–साथ अन्य सभी पशुओं में किलनी की समस्या पशुशाला की अच्छी व्यवस्था न होने पर अधिक हो जाती है। इसलिये जहाँ पर पशु रखें वहाँ पूर्ण रूप से सफाई करके कीटनाशक दवा का छिड़काव अथवा चूना का छिड़काव बीच–बीच में करते रहें। साथ ही किलनी को समाप्त करने के लिए 2–3 मिली व्यूटाक्स दवा 2 लीटर पानी में डालकर साफ कपड़े को उसी में भिगोकर पशु के पूरी शरीर पर लगायें। लगाने के आधे घण्टे बाद साफ पानी से नहला दें सभी किलनी मर कर समाप्त हो जायेगी।●

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित